हिन्दी पाठ-संचयन

कक्षा–एकादश एवं द्वादश

नवीन पाठ्य–क्रम

हिन्दी 'अ' (प्रथम भाषा)

पश्चिम बंग सरकार द्वारा आर्थिक अनुदान

एकादश श्रेणी के छात्र–छात्राओं को बिना मूल्य वितरण के लिए।

विक्रय के लिए नहीं।

पश्चिमबंग उच्च माध्यमिक शिक्षा परिषद्

पश्चिम बंग उच्च माध्यमिक शिक्षा परिषद

प्रथम संस्करण : अप्रैल, 2016

द्वितीय संस्करण : जनवरी, 2017

प्रकाशक

पश्चिम बंग उच्च माध्यमिक शिक्षा परिषद

मुद्रक

वेस्ट बंगाल टेक्स्ट बुक कार्पोरेशन लिमिटेड

(पश्चिम बंग सरकार का उपक्रम)

कोलकाता – 700 056

सत्यमेव जयते

भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न समाजवादी, पंथ-निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को :

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय,

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म

और उपासना की स्वतंत्रता,

प्रतिष्ठा और अवसर की समता

प्राप्त कराने के लिए,

तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और

राष्ट्र की एकता और अखंडता

सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए

दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर 1949 ई० (मिति मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी, संवत् दो हजार छह विक्रमी) को एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

भूमिका

पश्चिम बंग के विद्यालयी शिक्षा–विभाग की 'विशेषज्ञ समिति' द्वारा निर्मित एवं 'पश्चिम बंग उच्च माध्यमिक शिक्षा परिषद' द्वारा प्रकाशित **'हिन्दी पाठ–संचयन पुस्तक'** का नवीन संस्करण नये कलेवर में प्रस्तुत किया गया है। यह एकादश एवं द्वादश कक्षा के विद्यार्थियों के लिए हिन्दी प्रथम भाषा की पाठ्य पुस्तक है। नये पाठ्यक्रम एवं पाठ्यचर्या के अनुसार प्रकाशित **हिन्दी पाठ–संचयन** पुस्तक का मूल उद्देश्य वर्तमान समय के विद्यार्थियों को हिन्दी साहित्य के समृद्ध भण्डार से परिचित कराना है। हमें विश्वास है कि इस उद्देश्य को प्राप्त करने में आशातीत सफलता मिलेगी। एकादश एवं द्वादश श्रेणी के विद्यार्थीगण इस संकलन के माध्यम से देश के ख्याति प्राप्त हिन्दी साहित्यकारों की रचनाओं का आस्वादन कर सकेंगे। इस संकलन में गद्य एवं पद्य की विविध रचनाओं को विभिन्न विधाओं (निबंध, कहानी, यात्रा–वृत्त, नाटक एवं कविता) के साथ संकलित किया गया है।

माननीय **शिक्षा मंत्री डॉ० पार्थ चटर्जी** के प्रयास के फलस्वरूप पश्चिम बंग सरकार के शिक्षा–विभाग के अनुदान से इस पुस्तक को वर्ष 2017 से विद्यार्थियों को बिना मूल्य देने का निर्णय लिया गया है। हम पश्चिम बंग सरकार के माननीय शिक्षा मंत्री **डॉ० पार्थ चटर्जी** के प्रति इसकी शुरुआत के लिए आभार व्यक्त करते हैं साथ ही पश्चिम बंग सरकार के शिक्षा–विभाग के प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

हम उन सभी लोगों को हार्दिक धन्यवाद देते हैं और अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं जिन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशन में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अपना योगदान दिया है।

इस पुस्तक के सुधार के लिए विद्वानों एवं शिक्षा–प्रेमी व्यक्तियों के सुझावों एवं विचारों का सादर स्वागत है।

जनवरी, 2017

विद्यासागर भवन

डॉ० महुआ दास

सभापति

पश्चिम बंग उच्च माध्यमिक शिक्षा परिषद

प्रस्तावना

पश्चिम बंग की **माननीया मुख्य मंत्री सुश्री ममता बन्द्योपाध्याय** के निर्देश से वर्ष 2011 में विद्यालयी शिक्षा की 'विशेषज्ञ समिति' का गठन किया गया। 'विशेषज्ञ समिति' एवं 'पश्चिम बंग उच्च माध्यमिक शिक्षा परिषद' के संयुक्त प्रयास से निर्मित एवं राज्य सरकार द्वारा अनुमोदित एकादश एवं द्वादश कक्षा के लिए हिन्दी प्रथम भाषा की पाठ्यपुस्तक 'हिन्दी पाठ-संचयन' का प्रकाशन किया गया है जिसे सभी सरकारी, सरकार समर्थित, सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त एवं सरकार सम्बद्ध विद्यालयों में पढ़ाया जाएगा।

नवीन पाठ्यक्रम एवं पाठ्यचर्या पर आधारित यह संकलन देश के ख्याति प्राप्त हिन्दी रचनाकारों के कहानी, निबंध, नाटक, यात्रा-वृत्त, एवं कविताओं का संचयन है। पाठों के चयन में विद्यार्थियों की आयु को ध्यान में रखा गया है। प्रश्न-पत्र के प्रारूप एवं अंक-विभाजन में मूलभूत परिवर्तन किया गया है। उच्च माध्यमिक के पाठ्यक्रम में परियोजना कार्य को भी शामिल किया गया है। वर्ष 2013 से नवीन पाठ्यक्रम एवं पाठ्यचर्या के अनुसार निर्मित पुस्तक के पठन-पाठन से उच्च माध्यमिक स्तर पर हिन्दी प्रथम भाषा के क्षेत्र में गुणात्मक परिवर्तन देखा जा रहा है।

राज्य सरकार ने वर्ष 2017 से इस पुस्तक को विद्यार्थियों को बिना मूल्य वितरित करने का निर्णय लिया है, जिससे वे लाभान्वित हो सकें। हम पश्चिम बंग सरकार के माननीय शिक्षामंत्री **डॉ० पार्थ चटर्जी** के प्रति इसकी पहल के लिए कृतज्ञता प्रकट करते हैं। हम पश्चिम बंग सरकार के शिक्षा-विभाग के प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

हम **प्रो० (डॉ०) महुआ दास** एवं **प्रो० सुब्रत घोष** को उनके बहुमूल्य सुझाव और योगदान हेतु कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। इस पुस्तक के प्रकाशन में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सहयोग देने वाले सभी व्यक्तियों को हार्दिक धन्यवाद देते हैं और आभार प्रकट करते हैं।

जनवरी, 2017
निवेदिता भवन

अभीक मजुमदार
चेयरमैन
विशेषज्ञ समिति, विद्यालय शिक्षा विभाग
पश्चिम बंग सरकार

उच्च माध्यमिक हिन्दी सलाहकार समिति

पश्चिमबंग उच्च माध्यमिक शिक्षा परिषद्

अभीक मजुमदार
(चेयरमैन, विशेषज्ञ समिति)

डॉ० महुआ दास
(सभापति, पश्चिम बंग उच्च माध्यमिक शिक्षा परिषद)

रथीन्द्रनाथ दे
(सदस्य–सचिव, विशेषज्ञ समिति)

प्रो० सुब्रत घोष
(सचिव, पश्चिम बंग उच्च माध्यमिक शिक्षा परिषद)

मुख्य समन्वयक

प्रो. रिंकू घोष

सदस्य

श्रीमती सुनीता मेहरा

श्री पीयूष श्रीवास्तव

डॉ० पूनम पाठक

श्रीमती सुधा त्रिपाठी

श्रीमती अर्चना सिंह

श्रीमती तानिया गुप्ता चौधरी

सहायक सदस्य

कौशल कुमार पाण्डेय

परामर्शदाता

श्री अरुण कुमार सिंह

प्रधानाध्यापक
आदर्श शिक्षा निकेतन
6/4B सचिन मित्रा लेन, श्यामबाजार
कोलकाता – 700 003

आवरण

शान्तनु दे

अनुशीलनी

कक्षा–एकादश

निबंध

मेरे राम का मुकुट भीग रहा है	विद्यानिवास मिश्र	03-08
महाजनी सभ्यता	मुंशी प्रेमचंद	09-14

कहानी/यात्रा–वृत्तांत

मैं नर्क से बोल रहा हूँ	हरिशंकर परसाई	17-20
बिगड़ैल बच्चे	मनीषा कुलश्रेष्ठ	21-30
बहता पानी निर्मला	सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'	31-34

एकांकी

आजादी की नींद	भुवनेश्वर प्रसाद	37-47

काव्य

सूरदास के पद	सूरदास	51-52
रसखान के सवैये	रसखान	53
घनानंद के पद	घनानंद	54
अरी वरुणा की शांत कछार	जयशंकर प्रसाद	55-56
जो बीत गई सो बात गई	हरिवंशराय 'बच्चन'	57-58
अकाल और उसके बाद	नागार्जुन	59

अनुशीलनी

कक्षा–द्वादश

निबंध

कुटज	हजारी प्रसाद द्विवेदी	65-70
कलाकार की व्यक्तिगत ईमानदारी : एक	गजानन माधव 'मुक्तिबोध'	71-76

कहानी

भाई–बहन	बंग महिला (राजेन्द्र बाला घोष)	79-81
नशा	मुंशी प्रेमचंद	82-86
मलबे का मालिक	मोहन राकेश	89-96

काव्य

कबीर के पद	कबीरदास	99-100
तुलसीदास के पद	तुलसीदास	101-102
सन्ध्या सुन्दरी	सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'	103-104
अवकाशवाली सभ्यता	रामधारी सिंह 'दिनकर'	105-106
समय के ढेर पर	गिरिजा कुमार माथुर	107-108
हो गई है पीर पर्वत–सी	दुष्यंत कुमार	109

पारिभाषिक शब्दावली **113**

हिन्दी–'अ'

पाठ्य सामग्री (एकादश)

[पूर्णांक : 100 (80 + 20)]

गद्य	30	**अंक**
काव्य	20	अंक
हिंदी साहित्य का इतिहास	10	अंक
निबंध लेखन	10	अंक
व्याकरण	10	अंक
परियोजना (project)	20	अंक
कुल	100	**अंक**

गद्य

मेरे राम का मुकुट भीग रहा है — विद्यानिवास मिश्र

महाजनी सभ्यता — मुंशी प्रेमचंद

कहानी / यात्रा–वृत्तांत

मैं नर्क से बोल रहा हूँ — हरिशंकर परसाई

बिगड़ैल बच्चे — मनीषा कुलश्रेष्ठ

बहता पानी निर्मला — सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'

काव्य

सूरदास : (क) वात्सल्य के पद :

(i) मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायौ...

(ii) मैया मोरी मैं नहिं माखन खायो...

(ख) भ्रमरगीत :

(i) ऊधो मन नहीं हाथ हमारे

(ii) मधुबन तुम कत रहत हरे

रसखान : (i) मानुष हौं तो वही रसखानि...

(ii) वा लकुटी और कामरिया...

(iii) सेस गनेस महेस दिनेस ...

घनानंद : (i) भोर तें सांझ लौं कानन ओर निहारती...

(ii) अति सूधो सनेह को मारग है...

प्रसाद : अरी वरुणा की शांत कछार (लहर काव्य-संग्रह)

हरिवंश राय 'बच्चन' : जो बीत गई सो बात गई

नागार्जुन : अकाल और उसके बाद

हिंदी साहित्य का इतिहास

(i) हिंदी भाषा : उद्‌भव और विकास

(ii) आदिकाल की सामान्य प्रवृत्तियाँ

(प्रमुख कवि — चन्दवरदाई, विद्यापति, अमीर खुसरो)

(iii) भक्तिकाल की सामान्य प्रवृत्तियाँ,

(क) निर्गुण काव्य धारा :

(अ) संत काव्य धारा, सूफी काव्य धारा की सामान्य प्रवृत्तियाँ

(प्रमुख कवि — कबीरदास, मलिक मुहम्मद जायसी)

(ख) सगुण काव्य धारा:

(अ) कृष्ण भक्ति धारा, राम भक्ति धारा की सामान्य प्रवृत्तियाँ

(प्रमुख कवि — सूरदास, तुलसीदास)

(iv) रीतिकाल की सामान्य प्रवृत्तियाँ :

(प्रमुख कवि — केशव दास, भूषण, बिहारी, घनानंद)

निबंध लेखन :

व्याकरण (पाठ्य-पुस्तक पर आधारित)

वाक्य-संशोधन, वाक्य-परिवर्तन, वचन, लिंग-निर्णय, उपसर्ग, प्रत्यय)

परियोजना : (कोई एक)

नाटक : किसी कहानी, प्रसंग, कविता आदि का नाट्य रूपांतर और उसकी हस्तलिखित प्रस्तुति

अथवा

रेडियो : समाचार एवं रेडियो — नाट्य रूपांतर

(किसी नाटक / एकांकी का रेडियो रूपांतरण कराया जा सकता है।)

निबंध

मेरे राम का मुकुट भीग रहा है

विद्यानिवास मिश्र

लेखक परिचय :

हिन्दी निबंधकारों में विद्यानिवास मिश्र जी का अन्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। मिश्र जी का जन्म 14 फरवरी 1926 ई० को गोरखपुर जिले के पकड़डीहा गांव में हुआ था। इन्होंने गोरखपुर विश्वविद्यालय से पी०एच०डी० उपाधि प्राप्त की। इन्होंने गोरखपुर विश्वविद्यालय एवं संस्कृत विश्वविद्यालय में अनेक वर्षों तक अध्यापन कार्य किया। मिश्र जी काशी विद्यापीठ के उपकुलपति भी रहे।

जीवन के संचित अनुभव को गंभीर चिन्तन के साथ उन्होंने अपने निबंधों में अभिव्यक्त किया है। लोकजीवन और लोकसंस्कृति के साथ -साथ आधुनिक जीवन की विसंगतियों को भी उन्होंने प्रकट किया है। उनकी शैली काव्यमय, व्यंग्यपूर्ण, गंभीर एवं मधुर है, जिसमें आदर्शों तथा परम्पराओं के प्रति विशेष मोह दिखाई पड़ता है। ***मिश्र जी की प्रमुख कृतियाँ हैं*** *— 'अग्निरथ', 'लागो रंग हरी', 'कदम की फूली डाल', 'तुम चंदन हम पानी', 'आँगन का पंछी और बंजारा मन', 'बसन्त आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं', 'परम्परा बंधन नहीं', 'शेफाली भर रही है', 'तुलसी मंजरी', 'चितवन की छाँह', 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है', 'मैंने सिल पहुँचाई' आदि प्रमुख निबंध-संग्रह है। हिन्दी शब्द सम्पदा, जीवन में सनातन की खोज, भारतीय भाषा दर्शन की पीठिका आदि उनकी शोधपरक और आलोचनात्मक कृतियाँ हैं।*

मिश्र जी राज्यसभा के सदस्य रहे। उन्हें पद्मभूषण सम्मान से भी सम्मानित किया गया। उनकी मृत्यु 14 फरवरी 2005 ई० को हुई।

महीनों से मन बेहद-बेहद उदास है। उदासी की कोई खास वजह नहीं, कुछ तबीयत ढीली, कुछ आस-पास के तनाव और कुछ उनसे टूटने का डर, खुले आकाश के नीचे भी खुलकर साँस लेने की जगह की कमी, जिस काम में लगकर मुक्ति पाना चाहता हूँ, उस काम में हजार बाधाएँ; कुल ले-देकर उदासी के लिए इतनी बड़ी चीज नहीं बनती। फिर भी रात-रात नींद नहीं आती। दिन ऐसे बीतते हैं, जैसे भूतों के सपनों की एक रील पर दूसरी रील चढ़ा दी गयी हो और भूतों की आकृतियाँ और डरावनी हो गयी हों। इसलिए कभी-कभी तो बड़ी-से-बड़ी परेशानी करने वाली बात हो जाती है और कुछ भी परेशानी नहीं होती, उल्टे ऐसा लगता है, जो हुआ, एक सहज क्रम में हुआ, न होना ही कुछ अटपटा होता और कभी-कभी बहुत मामूली-सी बात भी भयंकर चिंता का कारण बन जाती है।

अभी दो–तीन रात पहले मेरे एक साथी संगीत का कार्यक्रम सुनने के लिए नौ बजे रात गये, साथ में जाने के लिए मेरे एक चिरंजीव ने और मेरी एक मेहमान, महानगरीय वातावरण में पली कन्या ने अनुमति माँगी। शहरों की, आजकल की असुरक्षित स्थित का ध्यान करके इन दोनों को जाने तो नहीं देना चाहता था, पर लड़कों का मन भी तो रखना होता है, कह दिया, एक–डेढ़ घंटे सुनकर चले आना।

रात के बारह बजे। लोग नहीं लौटे। गृहिणी बहुत उद्विग्न हुई; झल्लायीं; साथ में गए मित्र पर नाराज होने के लिए संकल्प बोलने लगीं। इतने में जोर की बारिश आ गई। छत से बिस्तर समेटकर कमरे में आया। गृहिणी को समझाया, बारिश थमेगी, आ जाएँगे, संगीत में मन लग जाता है, तो उठने की तबीयत नहीं होती, तुम सोओ ऐसे बच्चे नहीं हैं। पत्नी किसी तरह शांत होकर सो गईं, पर मैं अकुला उठा, बारिश निकल गई, ये लोग नहीं आए। बरामदे में कुर्सी लगाकर राह जोहने लगा। दूर कोई भी आहट होती, तो उदग्र होकर फाटक की ओर देखने लगता। रह–रहकर बिजली चमक जाती थी और सड़क छिप जाती थी। पर सामने की सड़क पर कोई रिक्शा नहीं, कोई चिरई का पूत नहीं। एकाएक कई दिनों से मन में उमड़ती–घुमड़ती पंक्तियाँ गूंज गईं।

"मोरे राम के भीजै मुकुटवा,
लछिमन के पटुकवा
मोरी सीता के भीजै सेनुरवा
त राम घर लौटहिं।"

(मेरे राम का मुकुट भीग रहा होगा, मेरे लखन का पटुका (दुपट्टा) भीग रहा होगा, मेरी सीता की माँग का सिंदूर भीग रहा होगा, मेरे राम घर लौट आते।)

बचपन में दादी–नानी जाँते पर वह गीत गातीं, मेरे घर से बाहर जाने पर विदेश में रहने पर वे यही गीत विह्वल होकर गातीं और लौटने पर कहती – 'मेरे लाल को कैसा वनवास मिला था।' तब मुझे दादी–नानी की इस आकुलता पर हँसी भी आती, गीत का स्वर बड़ा मीठा लगता. हाँ, तब उसका दर्द नहीं छूता। पर इस प्रतीक्षा में एकाएक उसका दर्द उस ढलती रात में उभर आया और सोचने लगा, आने वाली पीढ़ी पिछली पीढ़ी की ममता की पीड़ा नहीं समझ पाती और पिछली पीढ़ी अपनी संतान के संभावित संकट की कल्पना मात्र से उद्विग्न हो जाती है। मन में यह प्रतीति ही नहीं होती कि अब संतान समर्थ है, बड़ा–से–बड़ा संकट झेल लेगी। बार–बार मन को समझाने की कोशिश करता, लड़की दिल्ली विश्वविद्यालय के एक कॉलेज में पढ़ाती है, लड़का संकट–बोध की कविता लिखता है, पर लड़की का ख्याल आते ही दुश्चिंता होती। गली में जाने कैसे तत्त्व रहते हैं! लौटते समय कहीं कुछ हो न गया हो और अपने भीतर अनायास अपराधी होने का भाव जाग जाता, मुझे रोकना चाहिए था या कोई व्यवस्था करनी चाहिए थी, परायी लड़की (और लड़की तो हर एक परायी होती है, धोबी की मुटरी की तरह घाट पर खुले आकाश में कितने दिन फहरायेगी, अंत में उसे गृहिणी बनने जाना ही है) घर आयी, कहीं कुछ हो न जाए!

मन फिर घूम गया। कौसल्या की ओर, लाखों–करोड़ों कौसल्याओं की ओर, और लाखों–करोड़ों कौसल्याओं के द्वारा मुखरित एक अनाम–अरूप कौसल्या की ओर, इन सबके राम वन में निर्वासित हैं, पर

क्या बात है कि मुकुट अभी थी उनके माथे पर बँधा है और उसी के भीगने की इतनी चिंता है? क्या बात है कि आज भी काशी की रामलीला आरम्भ होने के पूर्व एक निश्चित मुहूर्त में मुकुट की ही पूजा सबसे पहले की जाती है? क्या बात है कि तुलसीदास ने 'कानन' को 'सत अवध समाना' कहा और चित्रकूट में ही पहुँचने पर उन्हें 'कलि की कुटिल कुचाल' दीख पड़ी? क्या बात है कि आज भी वनवासी धनुर्धर राम ही लोकमानस के राजा राम बने हुए हैं? कहीं-न-कहीं इन सबके बीच एक संगति होनी चाहिए।

अभिषेक की बात चली, मन से अभिषेक हो गया और मन में राम के साथ राम का मुकुट प्रतिष्ठित हो गया। मन में प्रतिष्ठित हुआ, इसलिए राम ने राजकीय वेश उतारा, राजकीय रथ से उतरे, राजकीय भोग का परिहार किया, पर मुकुट तो लोगों के मन में था, कौसल्या के मातृ-स्नेह में था, वह कैसे उतरता, वह मस्तक पर विराजमान रहा और राम भीगें, मुकुट न भीगने पाये, इसकी चिंता बनी रही। राजा राम के साथ उनके अंगरक्षक लक्ष्मण का कमर-बंद दुपट्टा भी (प्रहरी की जागरुकता का उपलक्षण) न भीगने पाये, अखंड सौभाग्यवती सीता की माँग का सिंदूर न भीगने पाये, सीता भले ही भीग जाएँ। राम तो वन से लौट आये, सीता को लक्ष्मण फिर निर्वासित कर आए, पर लोकमानस में राम की वनयात्रा अभी नहीं रुकी। मुकुट, दुपट्टे और सिंदूर के भीगने की आशंका अभी थी साल रही है। कितनी अयोध्याएँ बसीं, उजड़ीं, पर निर्वासित राम की असली राजधानी, जंगल का रास्ता अपने काँटों-कुशों, कंकड़ों-पत्थरों की वैसी ही ताजा चुभन लिए हुए बरकरार है, क्योंकि जिनका आसरा साधारण गँवार आदमी भी लगा सकता है, वे राम तो सदा निर्वासित ही रहेंगे और उनके राजपाट को सँभालने वाले भरत अयोध्या के समीप रहते हुए भी उनसे भी अधिक निर्वासित रहेंगे, निर्वासित ही नहीं, बल्कि एक कालकोठरी में बंद जिलावतनी की तरह दिन बिताएँगे।

सोचते-सोचते लगा कि इस देश की ही नहीं, पूरे विश्व की एक कौसल्या है; जो हर बारिश में बिसूर रही है - 'मोरे राम के भीजै मुकुटवा' (मेरे राम का मुकुट भीग रहा होगा।) मेरी संतान, ऐश्वर्य की अधिकारिणी संतान वन में घूम रही है, उसका मुकुट, उसका ऐश्वर्य भीग रहा है, मेरे राम कब घर लौटेंगे, मेरे राम के सेवक का दुपट्टा भीग रहा है, उसका जागरण भीग रहा है, मेरे राम की सहचारिणी सीता का सिंदूर भीग रहा है, उसका अखंड सौभाग्य भीग रहा है, मैं कैसे धीरज धरूँ? मनुष्य की इस सनातन नियति से एकदम आतंकित हो उठा, ऐश्वर्य और निर्वासन दोनों साथ-साथ चलते हैं। जिसे ऐश्वर्य सौंपा जाने को है, उसका निर्वासित होना पहले से बदा है। जिन लोगों के बीच रहता हूँ, वे सभी मंगल नाना के नाती हैं, वे 'मुद मंगल' में ही रहना चाहते हैं, मेरे जैसे आदमी को वे निराशावादी समझकर बिरादरी से बाहर ही रखते हैं, डर लगता रहता है कि कहीं उड़कर उन्हें भी दु:ख न लग जाए, पर मैं अशेष मंगलाकांक्षाओं के पीछे से झाँकती हुई दुर्निवार शंकाकुल आँखों से झांकता हूँ, तो मंगल का सारा उत्साह फीका पड़ जाता है और बंदनवार न दिखकर बटोरी हुई रस्सी की शक्ल में कुंडली मारे नागिन दिखती है, मंगल-घट औंधाई हुई अधफूटी गगरी दिखता है, उत्सव की रोशनी का तामझाम धुओं की गाँठों का अंबार दिखता है और मंगल-वाद्य डेरा उखाड़ने वाले अंतिम कारवरदार की उसाँस में बजकर एकबारगी बंद हो जाता है।

लागति अवध भयावह भारी,
मानहुँ कालराति अँधियारी।
घोर जंतु सम पुर नरनारी,

डरपहिं एकहि एक निहारी।
घर मसान परिजन जनु भूता।
सुत हित मीत मनहुँ जमदूता।।
बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं,
सरित सरोवर देखि न जाहीं।

कैसे मंगलमय प्रभात की कल्पना थी और कैसी अंधेरी कालरात्रि आ गई है? एक-दूसरे को देखने से डर लगता है। घर मसान हो गया है, अपने ही लोग भूत-प्रेत बन गये हैं, पेड़ सूख गये हैं, लताएँ कुम्हला गयी हैं। नदियों और सरोवरों को देखना भी दुस्सह हो गया है। केवल इसलिए कि जिसका ऐश्वर्य से अभिषेक हो रहा था, वह निर्वासित हो गया है। उत्कर्ष की ओर उन्मुख समष्टि का चैतन्य अपने ही घर से बाहर कर दिया गया। उत्कर्ष की मनुष्य की ऊर्ध्वोन्मुख चेतना की यही कीमत सनातन काल से अदा की जाती रही है। इसीलिए जब कीमत अदा कर ही दी गई, तो उत्कर्ष कम-से-कम सुरक्षित रहे, यह चिंता स्वाभाविक हो जाती है। राम भीगें तो भीगें, राम के उत्कर्ष की कल्पना न भीगे, वह हर बारिश में हर दुर्दिन में सुरक्षित रहे। नर के रूप में लीला करने वाले नारायण निर्वासन की व्यवस्था झेलें, पर नर रूप में उनकी ईश्वरता का बोध दमकता रहे, पानी की बूदों की झालर में उसकी दीप्ति छिपने न पाये। उस नारायण की सुख-सेज बने अनंत के अवतार लक्ष्मण भले ही भीगते रहें, उनका दुपट्टा, उनका अहर्निश जागर न भीजे, शेषो नारायण के ऐश्वर्य गौरव अनंत शेष के जागर-संकल्प से ही सुरक्षित हो सकेगा और इन दोनों का गौरव जगज्जननी आद्याशक्ति के अखण्ड सौभाग्य, सीमंत सिंदूर से रक्षित हो सकेगा, उस शक्ति का एकनिष्ठ प्रेम पाकर राम का मुकुट है, क्योंकि राम का निर्वासन वस्तुतः सीता का दुहरा निर्वासन है। राम तो लौटकर राजा होते हैं, पर रानी होते ही सीता राजा राम द्वारा वन में निर्वासित कर दी जाती हैं। राम के साथ लक्ष्मण हैं, सीता हैं, सीता वन्य पशुओं से घिरी हुई विजन में सोचती हैं-प्रसव की पीड़ा हो रही है, कौन इस वेला में सहारा देगा, कौन प्रसव के समय प्रकाश दिखलाएगा, कौन मुझे सँभालेगा, कौन जन्म के गीत गाएगा?

कोई गीत नहीं गाता। सीता जंगल की सूखी लकड़ी बीनती हैं, जलाकर अंजोर करती हैं और जुड़वाँ बच्चों का मुँह निहारती हैं। दूध की तरह अपमान की ज्वाला में चित्त कूद पड़ने के लिए उफनता है और बच्चों की प्यारी और मासूम सूरत देखते ही उस पर पानी के छींटे पड़ जाते हैं, उफान दब जाता है। पर इस निर्वासन में भी सीता का सौभाग्य अखण्डित है, वह राम के मुकुट को तब भी प्रमाणित करता है, मुकुटधारी राम को निर्वासन से भी बड़ी व्यथा देता है और एक बार और अयोध्या जंगल बन जाती है, स्नेह की रसधार रेत बन जाती है, सब कुछ उलट-पलट जाता है, भवभूति के शब्दों में पहचान की बस एक निशानी बच रहती है, दूर ऊँचे खड़े तटस्थ पहाड़, राजमुकुट में जड़े हीरों की चमक के सैकड़ों शिखर, एकदम कठोर, तीखे और निर्मम –

पुरा यत्र स्त्रोतः पुलिनमधुना तत्र सरितां
विपर्यासं यातो धनविरल भाव क्षितिरुहाम्।
बहोः कालाद् दृष्टं ह्यापरमिव मन्ये वनमिदं
निवेशः शैलानां तदिदमिति बुद्धिं द्रयति।

राम का मुकुट इतना भारी हो उठता है कि राम उस बोझ से कराह उठते हैं और इस वेदना के चीत्कार में सीता के माथे का सिंदूर और दमक उठता है, सीता का वर्चस्व और प्रखर हो उठता है।

कुर्सी पर पड़े-पड़े यह सोचते-सोचते चार बजने को आए, इतने में दरवाजे पर हल्की-सी दस्तक पड़ी, चिरंजीव निचली मंजिल से ऊपर नहीं चढ़े, सहमी हुई कृष्णा (मेरी मेहमान लड़की) बोली-दरवाजा खोलिए। आँखों में इतनी कातरता कि कुछ कहते नहीं बना, सिर्फ इतना कहा कि तुम लोगों को इसका क्या अंदाज होगा कि हम कितने परेशान रहे हैं। भोजन-दूध धरा रह गया, किसी ने भी छुआ नहीं, मुँह ढाँपकर सोने का बहाना शुरु हुआ मैं भी स्वस्ति की साँस लेकर बिस्तर पर पड़ा, पर अर्धचेतन अवस्था में फिर जहाँ खोया हुआ था, वहीं लौट गया। अपने लड़के घर लौटे, बारिश से नहीं, संगीत से भीग कर, मेरी दादी-नानी के गीतों के राम, लखन और सीता अभी भी वन-वन भीग रहे हैं। तेज बारिश में पेड़ की छाया और दु:खद हो जाती है, पेड़ की हर पत्ती से टप-टप बूँदें पड़ने लगती हैं। तने पर टिकें, तो उसकी हर नस-नस से आप्लावित होकर बारिश पीठ गलाने लगती है।जाने कब से मेरे राम भीग रहे हैं और बादल हैं कि मूसलाधार ढरकाये चले जा रहे हैं, इतने में मन में एक चोर धीरे-से फुसफुसाता है, राम तुम्हारे कब से हुए, तुम, जिसकी बुनाहट पहचान में नहीं आती, जिसके व्यक्तित्व के ताने-बाने तार-तार होकर अलग हो गए हैं, तुम्हारे कहे जाने वाले कोई हो भी सकते हैं कि वह तुम कह रहे हो, मेरे राम! और चोर की बात सच लगती है, मन कितना बँटा हुआ है, मनचाही और अनचाही दोनों तरह की हजार चीजों में। दूसरे कुछ पतियायें भी पर अपने ही भीतर परतीति नहीं होती कि मैं किसी का हूँ या कोई मेरा है। पर दूसरी ओर यह भी सोचता हूँ कि क्या बार-बार विचित्र से अनमनेपन में अकारण चिंता किसी के लिए होती है, वह चिन्ता क्या पराये के लिए होती है, वह क्या कुछ भी अपना नहीं हैं? फिर इस अनमनेपन में ही क्या राम अपनाने के लिए हाथ नहीं बढ़ाते आए हैं, क्या न-कुछ होना और न-कुछ बनाना ही अपनाने की उनकी बढ़ी हुई शर्त नहीं है?

तार टूट जाता है, मेरे राम का मुकुट भीग रहा है, यह भीतर से कहाँ पाऊँ? अपनी उदासी से ऐसा चिपकाव अपने सँकरे-से-दर्द से ऐसा रिश्ता, राम को अपना कहने के लिए केवल उनके लिए भरा हृदय कहाँ पाऊँ? मैं शब्दों के घने जंगलों में खो गया हूँ। मानता हूँ, इन्हीं जंगलों के आसपास किसी टेकड़ी पर राम की पर्णकुटी है, पर इन उलझाने वाले शब्दों के अलावा मेरे पास कोई राह नहीं। शायद सामने उपस्थित अपने ही मनोराज्य के युवराज, अपने बचे-खुचे स्नेह के पात्र, अपने भविष्यत् के संकट की चिंता में राम के निर्वासन का जो ध्यान आ जाता है, उनसे भी अधिक एक बिजली से जगमगाते शहर में एक पढ़ी-लिखी चंद दिनों की मेहमान लड़की के एक रात कुछ देर से लौटने पर अकारण चिंता हो जाती है, उसमें सीता का ख्याल आ जाता है, वह राम के मुकुट या सीता के सिंदूर के भीगने की आशंका से जोड़े न जोड़े, आज की दरिद्र, अर्थहीन, उदासी को कुछ ऐसा अर्थ नहीं दे देता, जिसमें जिंदगी ऊब से कुछ उबर सके?

और इतने में पूरब से हल्की उजास आती है और शहर के इस शोर-भरे बियाबान में चक्की के स्वर के साथ चढ़ती-उतरती जंतसार गीति हल्की-सी सिरहन पैदा कर जाती है।'मोरे राम के भीजै मुकुटवा' और अमचूर की तरह विश्वविद्यालयी जीवन की नीरसता में सूखा मन कुछ जरूर ऊपरी सतह पर ही सही

भीगता नहीं, तो कुछ नम तो जरूर ही हो जाता है, और महीनों की उमड़ी-घुमड़ी उदासी बरसने-बरसने को आ जाती है। बरस न पाए, यह अलग है (कुछ भीतर भाप हो, तब न बरसे), पर बरसने का यह भाव जिस ओर से आ रहा है, उधर राह होनी चाहिए। इतनी असंख्य कौसल्याओं के कंठ में बसी हुई जो एक अरूप ध्वनिमयी कौसल्या है, अपनी सृष्टि के संकट में उसके सतत उत्कर्ष के लिए आकुल, उस कौसल्या की ओर, उस मानवीय संवेदना की ओर ही कहीं राह है, घास के नीचे दबी हुई। पर उस घास की महिमा अपरंपार है, उसे तो आज वन्य पशुओं का राजकीय संरक्षित क्षेत्र बनाया जा रहा है, नीचे ढँकी हुई राह तो सैलानियों के घूमने के लिए, वन्य पशुओं के प्रदर्शन के लिए, फोटो खींचने वालों की चमकती छवि यात्राओं के लिए बहुत ही रमणीक स्थली बनायी जा रही है। उस राह पर तुलसी और उनके मानस के नाम पर बड़े-बड़े तमाशे होंगे, फुलझड़ियाँ दगेंगी, सैर-सपाटे होंगे, पर वह राह ढँकी ही रह जायेगी, केवल चक्की का स्वर, श्रम का स्वर ढलती रात में। भीगती रात में, अनसोये वात्सल्य का स्वर राह तलाशता रहेगा—किस ओर राम मुड़े होंगे, बारिश से बचने के लिए? किस ओर? किस ओर? बता दो सखी।

महाजनी सभ्यता

मुंशी प्रेमचंद

लेखक परिचय :

कलम के जादूगर मुंशी प्रेमचंद का जन्म वाराणसी जिले के लमही गाँव में 31 जुलाई 1880 ई० को हुआ। विद्यालयी शिक्षा पूर्ण करके इन्होंने कुछ वर्षों तक अध्यापन कार्य किया। इन्होंने शिक्षा विभाग में सहविद्यालय निरीक्षक के पद पर भी कार्य किया। बाद में इन्होंने तत्कालीन राजनैतिक आन्दोलनों से प्रभावित होकर इस पद से त्याग पत्र दे दिया और आजीवन साहित्य सृजन में लगे रहे। प्रेमचंद जी उर्दू में नवाब राय के नाम से लिखते थे। उर्दू में प्रकाशित प्रथम कहानी संग्रह 'सोजे वतन' अंग्रेजी सरकार द्वारा जब्त करने के बाद प्रेमचंद के नाम से हिन्दी में लिखने लगे। इन्होंने माधुरी, हंस, जागरण आदि पत्रिकाओं का सम्पादन किया।

इनकी प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं *— सेवा-सदन, कायाकल्प, निर्मला, प्रेमाश्रम, कर्मभूमि, रंगभूमि, गबन, गोदान उनके प्रमुख उपन्यास हैं। सोजे वतन, प्रेमद्वादशी, प्रेमपूर्णिमा आदि इनके कहानी संग्रह हैं। इनकी कहानियों को मानसरोवर (आठ भागों में) में संग्रहित किया गया है। कर्बला, संग्राम, बलि की वेदी उनके द्वारा लिखित नाटक हैं। 'महाजनी सभ्यता' उनका निबंध है।*

प्रेमचंद जी अपने युग के प्रतिनिधि कथाकार थे। उनकी रचनाओं में तत्कालीन समस्याओं एवं कुरीतियों का यथार्थ निरूपण हुआ है। आम आदमी के दु:ख दर्द के चितेरे प्रेमचंद जी को एक निबंधकार के रुप में बहुत ही कम पहचाना गया। इनकी मृत्यु 8 अक्टूबर 1936 ई० को हुई।

'महाजनी सभ्यता' नामक निबंध पहले उर्दू में 'महाजनी तहजीब' शीर्षक से उर्दू मासिक पत्रिका 'कलीम' में अगस्त 1936 ई० में प्रकाशित हुआ था। बाद में प्रस्तुत शीर्षक से सितम्बर 1936 ई० में हिन्दी में प्रकाशित हुआ।

मुजद: ए दिल कि मसीहा नफसे मी आयद;
कि स अनफ़ाज़ खुशश बूए-कसे मी आयद।[1]

जागीरदारी सभ्यता में बलवान भुजाएँ और मजबूत कलेजा जीवन की आवश्यकताओं में परिगणित थे, और साम्राज्यवाद में बुद्धि और वाणी के गुण तथा मूक आज्ञापालन उसके आवश्यक साधन थे; पर उन दोनों

१. हृदय तू प्रसन्न हो कि पीयूष-पाणी मसीहा सशरीर तेरी ओर आ रहा है। देखता नहीं कि लोगों की साँसों से किसी की सुगन्धि आ रही है।

स्थितियों में दोषों के साथ कुछ गुण भी थे। मनुष्य के अच्छे भाव लुप्त नहीं हो गये थे। जागीरदार अगर दुश्मन के खून से अपनी प्यास बुझाता था, तो अकसर अपने किसी मित्र या उपकारक के लिए जान की बाजी भी लगा देता था। बादशाह अगर अपने हुक्म को कानून समझता था और उसकी अवज्ञा को कदापि सहन न कर सकता था, तो प्रजापालन भी करता था, न्यायशील भी होता था। दूसरे के देश पर चढ़ाई वह या तो किसी अपमान-अपकार का बदला फेरने के लिए करता था या अपनी आन-बान, रोब-दाब कायम रखने के लिए या फिर देश-विजय और राज्य विस्तार की वीरोचित महत्त्वाकांक्षा से प्रेरित होता था। उसकी विजय का उद्देश्य प्रजा का खून चूसना कदापि न होता था। कारण, यह कि राजा और सम्राट जनसाधारण को अपने स्वार्थसाधन और धन शोषण की भट्ठी का ईंधन न समझते थे, किन्तु उनके दु:ख-सुख में शरीक होते थे और उसके गुण की कद्र करते थे।

मगर इस महाजनी सभ्यता में सारे कामों की गरज महज पैसा होती है। किसी देश पर राज्य किया जाता है, तो इसलिए कि महाजनों, पूंजीपतियों को ज्यादा से ज्यादा नफा हो। इस दृष्टि से मानों आज दुनिया में महाजनों का ही राज्य है। मनुष्य समाज दो भागों में बँट गया है। बड़ा हिस्सा तो मरने और खपने वालों का है, और बहुत ही छोटा हिस्सा उन लोगों का है, जो अपनी शक्ति और प्रभाव से बड़े समुदाय को अपने बस में किए हुए हैं। इन्हें इस बड़े भाग के साथ किसी तरह की हमदर्दी नहीं, जरा भी रू-रियायत नहीं। उसका अस्तित्व केवल इसलिए है कि अपने मालिकों के लिए पसीना बहाये, खून गिराये और एक दिन चुपचाप इस दुनिया से बिदा हो जाय। अधिक दु:ख की तो बात यह है कि शासक वर्ग के विचार और सिद्धान्त शासित वर्ग के भीतर भी समा गये हैं, जिसका फल यह हुआ कि हर आदमी अपने को शिकारी समझता है और उसका शिकार है समाज। वह खुद समाज से बिल्कुल अलग है, अगर कोई संबंध है, तो यह कि किसी चाल या युक्ति से वह समाज को उल्लू बनावे और उससे जितना लाभ उठाया जा सकता हो, उठा ले।

धन-लोभ ने मानव-भावों को पूर्ण रूप से अपने अधीन कर लिया है। कुलीनता और शराफत, गुण और कमाल की कसौटी पैसा, और केवल पैसा है। जिसके पास पैसा है, देवता-स्वरूप है, उसका अन्त:करण कितना ही काला क्यों न हो। साहित्य, संगीत और कला-सभी धन की देहली पर माथा टेकनेवालों में है। यह हवा इतनी जहरीली हो गई है कि इसमें जीवित रहना कठिन होता जा रहा है। डॉक्टर और हकीम हैं कि वे बिना लम्बी फीस लिए बात नहीं करते। वकील और बैरिस्टर हैं कि वे मिनटों को अशर्फियों से तौलते हैं। गुण और योग्यता की सफलता उसके आर्थिक मूल्य के हिसाब से मानी जा रही है। मौलवी साहब और पण्डित जी भी पैसे वालों के बिना पैसे के गुलाम हैं, अखबार उन्हीं का राग अलापते हैं। इस पैसे ने आदमी के दिलोदिमाग पर इतना कब्जा जमा लिया है कि उसके राज्य पर किसी ओर से भी आक्रमण करना कठिन दिखाई देता है। वह दया और स्नेह, सच्चाई और सौजन्य का पुतला मनुष्य दया-मताशून्य जड़ यन्त्र बनकर रह गया है। इस महाजनी सभ्यता ने नये-नये नीति-नियम गढ़ लिए हैं जिन पर आज समाज की व्यवस्था चल रही है। उनमें से एक यह है कि समय ही धन है। पहले समय जीवन था, और उसका सर्वोत्तम उपयोग विद्या-कला का अर्जन अथवा दीन-दुखी जनों की सहायता था। अब इसका सबसे बड़ा सदुपयोग पैसा कमाना है। डॉक्टर साहब हाथ मरीज की नब्ज पर रखते हैं और निगाह घड़ी की सूई पर। उनका एक-एक मिनट एक-एक अशर्फी है। रोगी ने अगर एक अशर्फी नजर की है, तो उसे मिनट से ज्यादा वक्त नहीं दे सकते। रोगी अपनी दु:ख-गाथा सुनाने के लिए बेचैन है, पर डॉक्टर साहब का बिल्कुल ध्यान नहीं। उन्हें उससे जरा भी दिलचस्पी नहीं। उनकी निगाह में उस व्यक्ति का अर्थ केवल इतना ही है, कि वह फीस देता है। वह जल्द-से-जल्द नुस्खा लिखेंगे और दूसरे रोगी को देखने चले जायेंगे। मास्टर साहब पढ़ाने आते हैं, उनका एक घण्टा वक्त बंधा है। घड़ी सामने रख लेते हैं, जैसे ही घण्टा पूरा हुआ, वह उठ खड़े

हुए। लड़के का सबक अधूरा रह गया है तो रह जाय, उनकी बला से! अधिक समय कैसे दे सकते हैं, क्योंकि समय रुपया है। इस धन-लोभ ने मनुष्यता और मित्रता का नाम शेष कर डाला है। पति को पत्नी या लड़कों से बात करने की फुर्सत नहीं, मित्र और संबंधी किस गिनती में हैं। जितनी देर वह बातें करेगा, उतनी देर में तो कुछ कमा लेगा। कुछ कमा लेना ही जीवन की सार्थकता है, शेष सब कुछ समय-नाश है। बिना खाये-सोये काम नहीं चलता, बेचारा इससे लाचार है और इतना समय नष्ट करना ही पड़ता है।

आपका कोई मित्र या संबंधी अपने नगर में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका है, तो समझ लीजिए, उसके यहाँ अब आपकी रसाई मुमकिन नहीं। आपको उसके दरे-दौलत पर जाकर कार्ड भेजना होगा। उन महाशय को बहुत से काम होंगे, मुश्किल से आपसे एक-दो बातें करेंगे या साफ जवाब दे देंगे कि आज फुर्सत नहीं है। अब वह पैसे के पुजारी हैं, मित्रता और शील-संकोच के नाम पर कब की तिलांजलि दे चुके हैं।

आपका कोई दोस्त वकील है और आप किसी मुकदमे में फँस गये हैं, तो उससे किसी प्रकार की सहायता की आशा न रखिए। अगर वह मुरौवत को गंगा में डुबो नहीं चुका है, तो आपसे देन-लेन की बात शायद न करेगा; पर आपके मुकदमे की ओर तनिक भी ध्यान न देगा। इससे तो कहीं अच्छा है कि आप किसी अपरिचित के पास जाएँ और उसकी पूरी फीस अदा करें। ईश्वर न करे कि आज किसी को किसी चीज में कमाल हो जाय, फिर उसमें मनुष्यता नाम को न रह जाएगी, उसका एक-एक मिनट कीमती हो जाएगा।

इसका अर्थ यह नहीं की व्यर्थ की गपशप में समय नष्ट किया जाय, पर यह अर्थ अवश्य है कि धन-लिप्सा को इतना न बढ़ने दिया जाय कि वह मनुष्यता, मित्रता, स्नेह-सहानुभूति सबको निकाल बाहर करे।

पर आप उस पैसे के गुलाम को बुरा नहीं कह सकते। सारी दुनिया जिस प्रवाह में बह रही है, वह भी उसी में बह रहा है। मान-प्रतिष्ठा सदा से मानवीय आकांक्षाओं का लक्ष्य रहा है। जब विद्या-कला, मान-प्रतिष्ठा का साधन थी, उस समय लोग इन्हीं का अर्जन-अभ्यास करते थे। अब धन उसका एकमात्र उपाय है, तब मनुष्य मजबूर है कि एकनिष्ठ भाव से उसी की उपासना आराधना करे। वह कोई साधु-महात्मा, संन्यासी-उदासी नहीं; वह देख रहा है कि उसके पेशे में जो सौभाग्यशाली सफलता की कठिन यात्रा पूरी कर सके हैं, वह उसी राज-मार्ग के पथिक थे, जिस पर वह खुद चल रहा है। समय धन है एक सफल व्यक्ति का। वह सबको इसी सिद्धान्त का अनुसरण करते देखता है, तो उन्हीं के पदचिन्हों का अनुसरण करता है। इसमें उसका क्या दोष? मान-प्रतिष्ठा की लालसा तो दिल से मिठाई नहीं जा सकती। वह देख रहा है कि जिनके पास दौलत नहीं, और इसलिये नहीं कि उन्होंने वक्त को दौलत नहीं समझा, उनको कोई पूछनेवाला नहीं। वह अपने पेशे में उस्ताद है फिर भी उसकी कहीं पूछ नहीं। जिस आदमी में तनिक भी जीवन की आकांक्षा है वह तो उस उपेक्षा की स्थिति को सहन नहीं कर सकता। उसे तो मुरौवत, दोस्ती और सौजन्य को धता बतलाकर लक्ष्मी की आराधना में अपने को लीन कर देना होगा, तभी इस देवी का वरदान उसे मिलेगा, और यह कोई इच्छाकृत कार्य नहीं; किन्तु सर्वथा बाध्यकारी है। उसके मन की आस्था अपने-आप कुछ इस तरह की हो गई है कि उसे धनार्जन के सिवा और किसी काम से लगाव नहीं रहा। अगर उसे किसी सभा या व्याख्यान में आध घण्टा बैठना पड़े, तो समझ लो, वह कैद की घड़ियाँ काट रहा है। उसकी मानसिक, भावगत और सांस्कृतिक दिलचस्पियाँ किसी केन्द्र-बिन्दु पर आकर एकत्र हो गई हैं। और क्यों न हो? वह देख रहा है कि पैसे के सिवा उसका और कोई अपना नहीं। स्नेही मित्र भी अपनी गरज लेकर ही उनके पास आते हैं, स्वजन-सम्बन्धी भी उसके पैसे के पुजारी हैं। वह जानता है कि अगर वह निर्धन होता, तो यह जो दोस्तों का जमघट लग रहा है, उनमें से एक के भी दर्शन न होते, इन स्वजन-सम्बन्धियों में से एक

भी पास न फटकता। उसे समाज में अपनी एक हैसियत बनानी है, बुढ़ापे के लिए कुछ बचाना है, लड़कों के लिए कुछ कर जाना है, जिससे उन्हें दर-दर ठोकरें न खानी पड़ें। इस निष्ठुर, सहानुभूति शून्य दुनिया का उसे पूरा अनुभव है। अपने लड़कों को वह उन कठिन अवस्थाओं में नहीं पड़ने देना चाहता, जो सारी आशाओं-उमंगों पर पाला गिरा देती हैं, हिम्मत-हौसले को तोड़कर रख देती हैं। उसे वे सारी मंजिलें, जो एक साथ जीवन के आवश्यक अंग हैं, खुद तय करनी होंगी और जीवन को व्यापार के सिद्धान्त पर चलाये बिना वह इनमें से एक भी मंजिल पार नहीं कर सकता।

इस सभ्यता का दूसरा सिद्धान्त 'बिजनेस इस बिजनेस' है अर्थात् व्यवसाय व्यवसाय है, उसमें भावुकता के लिए गुंजाइश नहीं। पुराने जीवन-सिद्धान्त में वह लट्ठमार साफगोई नहीं है, जो निर्लज्जता कही जा सकती है और जो इस नवीन सिद्धान्त की आत्मा है। जहाँ लेन-देन का सवाल है, रुपये-पैसे का मामला है, वहाँ न दोस्ती का गुजर है, न मुरव्वत का, न इन्सानियत का। 'बिजनेस' में दोस्ती कैसी! जहाँ किसी ने इस सिद्धान्त की आड़ ली और आप लाजवाब हुए। फिर आपकी जबान नहीं खुल सकती। एक सज्जन जरूरत से लाचार होकर अपने किसी महाजन मित्र के पास जाते हैं और चाहते हैं कि वह उनकी कुछ मदद करे। यह भी आशा रखते हैं कि शायद सूद के दर में वह कुछ रियायत कर दें, पर जब देखते हैं कि वह महानुभाव मेरे साथ भी वही कारोबारी बर्ताव कर रहे हैं, तो कुछ रियायत की प्रार्थना करते हैं, मित्रता और घनिष्ठता के आधार पर आँखों में आँसू भरकर बड़े करुण स्वर में कहते हैं – ''महाशय, मैं इस समय बड़ा परेशान हूँ, नहीं तो आपको कष्ट न देता, ईश्वर के लिए मेरे हाल पर रहम कीजिए। समझ लीजिए कि एक पुराने दोस्त.... ।'' वहीं बात काटकर आज्ञा के स्वर में फरमाया जाता है, ''लेकिन जनाब, आप 'बिजनेस इज बिजनेस' इसे भूल जाते हैं।'' उसी क्षण कातर प्रार्थी पर मानों बम का गोला गिरता है। अब उसके पास कोई तर्क नहीं, कोई दलील नहीं। चुपके से उठकर अपनी राह लेता है या फिर अपने व्यवसाय-सिद्धान्त के भक्त मित्र की सारी शर्तें कबूल कर लेता है।

इस महाजनी सभ्यता ने दुनिया में जो नई रीति-नीतियाँ चलाई है उनमें सबसे अधिक घातक और रक्त-पिपासु यही व्यवसाय वाला सिद्धान्त है। मियाँ-बीबी में बिजनेस, बाप-बेटे में बिजनेस, गुरु-शिष्य में बिजनेस! सब मानवीय, आध्यात्मिक और सामाजिक नेह नाते समाप्त। आदमी-आदमी के बीच बस कोई लगाव है, तो बिजनेस का। लानत है इस 'बिजनेस' पर। लड़की अगर दुर्भाग्यवश क्वाँरी रह गई और अपनी जीविका का कोई उपाय न निकाल सकी, तो अपने बाप के घर में ही लौंडी बन जाना पड़ता है। यों लड़के-लड़कियाँ सभी घरों में काम-काज करते ही हैं, पर उन्हें कोई टहलुआ नहीं समझता, पर इस महाजनी सभ्यता में लड़की एक खास उम्र के बाद लौंडी और अपने भाइयों की मजदूरनी हो जाती है। पूज्य पिताजी भी अपने पितृ-भक्त बेटे के टहलुए बन जाते हैं और माँ अपने सपूत की टहलुई। स्वजन-सम्बन्धी तो किसी गिनती में नहीं। भाई भी भाई के घर आये तो मेहमान है। अकसर तो उसे मेहमानी का बिल भी चुकाना पड़ता है। इस सभ्यता की आत्मा है व्यक्तिवाद, आप स्वार्थी बनो सब कुछ अपने लिए।

पर यहाँ भी हम किसी को दोषी नहीं ठहरा सकते। वही मान प्रतिष्ठा, वही भविष्य की चिन्ता, वही अपने बाद बीवी-बच्चों के गुजर का सवाल, वही नुमाइश और दिखावे की आवश्यकता हर एक की गरदन पर सवार है, और वह हिल नहीं सकता। वह इस सभ्यता के नीति-नियमों का पालन न करे तो उसका भविष्य अन्धकारमय है।

अब तक दुनिया के लिए इस सभ्यता की रीति–नीति का अनुसरण करने के सिवा और कोई उपाय न था। उसे झख मारकर उसके आदेशों के सामने सिर झुकाना पड़ता था। महाजन अपने जोम में फूला फिरता था। सारी दुनिया उसके चरणों पर नाक रगड़ रही थी। बादशाह उसका बन्दा, वजीर उसके गुलाम, सन्धि–विग्रह की कुंजी उसके हाथ में, दुनिया उसकी महत्त्वाकांक्षाओं के सामने सिर झुकाए हुए, हर मुल्क में उसका बोलबाला!

परन्तु अब एक नई सभ्यता का सूर्य सुदूर पश्चिम से उदय हो रहा है, जिसने इस नाटकीय महाजनवाद या पूँजीवाद की जड़ खोदकर फेंक दी है, जिसका मूल सिद्धान्त यह है कि प्रत्येक व्यक्ति, जो अपने शरीर या दिमाग से मेहनत करके कुछ पैदा कर सकता है, राज्य और समाज का परम सम्मानित सदस्य हो सकता है और जो केवल दूसरों की मेहनत या बाप–दादों के जोड़े हुए धन पर रईस बना फिरता है, वह पतिततम प्राणी है। उसे राज्य प्रबन्ध में राय देने का हक नहीं और वह नागरिकता के अधिकारों का भी पात्र नहीं। महाजन इस नई लहर से अति उद्विग्न होकर बौखलाया हुआ फिर रहा है और सारी दुनिया के महाजनों की शामिल आवाज इस नई सभ्यता को कोस रही है, उसे शाप दे रही है। व्यक्ति–स्वातन्त्र्य, धर्म–विश्वास की स्वाधीनता और अपनी अन्तरात्मा के आदेश पर चलने की आजादी, वह इन सबको घातक, गला घोंट देनेवाली बता रही है। उस पर नये–नये लांछन लगाये जा रहे हैं, नई–नई हुरमतें तराशी जा रही हैं। वह काले–से–काले रंग में रँगी जा रही है, कुत्सित–से–कुत्सित रूप में चित्रित की जा रही है। उन सभी साधनों से जो पैसे वालों के लिए सुलभ हैं, काम लेकर उसके विरुद्ध प्रचार किया जा रहा है; पर सच्चाई है जो इस सारे अन्धकार को चीरकर दुनिया में अपनी ज्योति का उजाला फैला रही है।

निस्सन्देह इस नई सभ्यता ने व्यक्ति–स्वातन्त्र्य के पंजे, नाखून और दाँत तोड़ दिये हैं। उसके राज्य में अब एक पूँजीपति लाखों मजदूरों का खून पीकर मोटा नहीं हो सकता। उसे अब यह आजादी नहीं कि अपने नफे के लिए साधारण आवश्यकता की वस्तुओं के दाम चढ़ा सके, अपने सड़े–गले माल की खपत कराने के लिए युद्ध करा दे, गोला–बारूद और युद्ध सामग्री बनाकर दुर्बल राष्ट्रों का दमन कराये। अगर इसकी स्वाधीनता है तो निस्संदेह नई सभ्यता में स्वाधीनता नहीं। पर यदि स्वाधीनता का अर्थ यह है कि जनसाधारण को हवादार मकान, पुष्टिकर भोजन, साफ–सुथरे गाँव, मनोरंजन और व्यायाम की सुविधाएँ, बिजली के पंखे और रोशनी, सस्ते और सद्यः सुलभ न्याय की प्राप्ति हो, तो इस समाज–व्यवस्था में जो स्वाधीनता और आजादी है, वह दुनिया की किसी सभ्यतम कहानेवाली जाति को भी सुलभ नहीं है। धर्म की स्वतंत्रता का अर्थ अगर पुरोहितों, पादरियों, मुल्लाओं की मुफ्तखोर जमात के दंभमय उपदेशों और अन्धविश्वास–जनित रूढ़ियों का अनुसरण है, तो निस्संदेह वहाँ इस स्वातन्त्र्य का अभाव है; पर धर्म–स्वातन्त्र्य का अर्थ यदि लोक–सेवा, सहिष्णुता, समाज के लिए व्यक्ति का बलिदान, नेकनीयती, शरीर और मन की पवित्रता है, तो इस सभ्यता में धर्माचरण की जो स्वाधीनता है, और किसी देश को उसके दर्शन भी नहीं हो सकते।

जहाँ धन की कमी–बेशी के आधार पर असमानता है वहाँ, ईर्ष्या–द्वेष, जोर–जबर्दस्ती, बेईमानी, झूठे, मिथ्या अभियोग–आरोप, वेश्या–वृत्ति, व्यभिचार और सारी दुनिया की बुराईयाँ अनिवार्य रूप से मौजूद हैं। जहाँ धन का आधिक्य नहीं, अधिकांश मनुष्य एक ही स्थिति में हैं, वहाँ जलन क्यों हो और जब्र क्यों हो ? सतीत्व–विक्रय क्यों हो और व्यभिचार क्यों हो ? झूठे मुकदमें क्यों चलें और चोरी–डाके की वारदातें क्यों हों ? ये सारी बुराईयाँ तो दौलत की देन हैं; पैसे के प्रसाद हैं, महाजनी सभ्यता ने ही इनकी सृष्टि की है। वही इनको पालती है और वही यह भी चाहती है कि जो दलित, पीड़ित और विजित हैं, वे इसे ईश्वरीय विधान

समझकर अपनी स्थिति पर संतुष्ट रहें। उनकी ओर से तनिक भी विरोध-विद्रोह का भाव दिखाया गया, तो उसका सिर कुचलने के लिए, पुलिस-अदालत है, काला पानी है। आप शराब पीकर उसके नशे से नहीं बच सकते। आग लगाकर चाहें कि लपटें न उठें, असम्भव है। पैसा अपने साथ ये सारी बुराइयाँ लाता है, जिन्होंने दुनिया को नरक बना दिया है। इस पैसा-पूजा को मिटा दीजिए, सारी बुराइयाँ अपने-आप मिट जाएँगी, जड़ न खोदकर केवल फुनगी की पत्तियाँ तोड़ना बेकार है। यह नयी सभ्यता धनाढ्यता को हेय और लज्जाजनक तथा घातक विष समझती है। यहाँ कोई आदमी अमीरी ढंग से रहे तो लोगों की ईर्ष्या का पात्र नहीं होता, बल्कि तुच्छ और हेय समझा जाता है। गहनों से लदकर कोई स्त्री सुन्दरी नहीं बनती, घृणा की पात्र बनती है। साधारण जन-समाज से ऊँचा रहन-सहन रखना वहाँ बेहूदगी समझी जाती है। शराब पीकर वहाँ बहका नहीं जा सकता, अधिक मद्यपान वहाँ दोष समझा जाता है-धार्मिक दृष्टि से नहीं, किन्तु शुद्ध सामाजिक दृष्टि से, क्योंकि शराबखोरी से आदमी में धैर्य और कष्ट-सहन, अध्यवसाय और श्रमशीलता का अन्त हो जाता है।

हाँ, इस समाज-व्यवस्था ने व्यक्ति को यह स्वाधीनता नहीं दी है कि वह जन-साधारण को अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की तृप्ति का साधन बनाये और तरह-तरह के बहानों से उनकी मेहनत का फायदा उठाये, या सरकारी पद प्राप्त करके मोटी-मोटी रकमें उड़ाये और मूंछों पर ताव देता फिरे। वहाँ ऊँचे से ऊँचे अधिकारी की तनख्वाह भी उतनी ही है, जितनी एक कुशल कारीगर की। वह गगनचुम्बी प्रसादों में नहीं रहता, तीन-चार कमरों में ही उसे गुजर करनी पड़ती है। उसकी श्रीमतीजी रानी साहिबा या बेगम बनी हुई स्कूलों में इनाम बाँटती नहीं फिरती; बल्कि अक्सर मेहनत-मजदूरी या किसी अखबार के दफ्तर में काम करती है। सरकारी पद पाकर वह अपने को लाट साहब नहीं बल्कि जनता का सेवक समझता है। महाजनी सभ्यता का प्रेमी इस समाज-व्सवस्था को क्यों पसन्द करने लगा जिसमें उसे दूसरों पर हुकूमत जताने के लिए सोने-चाँदी के ढेर लगाने की सुविधाएँ नहीं ? पूँजीपति और जमींदार तो इस सभ्यता की कल्पना से ही काँप उठते हैं। उनकी जूड़ी का कारण हम समझ सकते हैं। पर जब वे लोग भी उसकी खिल्ली उड़ाने और उस पर फबतियाँ कसने लगते हैं जो अनजान में महाजनी सभ्यता समर्थन कर रहे हैं, तो हमें उनकी दास-मनोवृत्ति पर हँसी आती है। जिसमें मनुष्यता, आध्यात्मिकता, उच्चता और सौन्दर्यबोध है, वह कभी ऐसी समाज-व्यवस्था की सराहना नहीं कर सकता, जिसकी नींव लोभ, स्वार्थपरता और दुर्बल मनोवृत्ति पर खड़ी हो। ईश्वर ने तुम्हें विद्या और कला की संपत्ति दी है उसका सर्वश्रेष्ठ उपयोग यही है कि उसे जन-समाज की सेवा में लगाओ, यह नहीं कि उससे जन-समाज पर हुकूमत चलाओ, उसका खून चूसो और उसे उल्लू बनाओ।

धन्य है वह सभ्यता, जो मालदारी और व्यक्तिगत संपत्ति का अन्त कर रही है, और जल्दी या देर से दुनिया उसका पदानुसरण अवश्य करेगी। यह सभ्यता अमुक देश की समाज-रचना अथवा धर्म-मजहब से मेल नहीं खाती या उस वातावरण के अनुकूल नहीं है— यह तर्क नितान्त असंगत है। ईसाई मजहब का पौधा यरूशलम में उगा और सारी दुनिया उसके सौरभ से बस गई। बौद्ध-धर्म ने उत्तर भारत में जन्म ग्रहण किया और आधी दुनिया ने उसे गुरुदक्षिणा दी। मानव-स्वभाव अखिल विश्व में एक जैसा ही है। छोटी-मोटी बातों में अन्तर हो सकता है; पर मूलस्वरूप की दृष्टि से सम्पूर्ण मानव जाति में कोई भेद नहीं। जो शासन-विधान और समाज-व्यवस्था एक देश के लिए कल्याणकारी है, वह दूसरे देशों के लिए भी हितकर होगी। हाँ, महाजनी सभ्यता और उसके गुर्गे अपनी शक्ति भर उसका विरोध करेंगे, उसके बारे में भ्रमजनक बातों का प्रचार करेंगे, जनसाधारण को बहकावेंगे, उनकी आँखो में धूल झोंकेंगे, पर जो सत्य है एक-न-एक दिन उसकी विजय होगी और अवश्य होगी।

कहानी

एवं

यात्रा-वृत्तांत

मैं नर्क से बोल रहा हूँ!

हरिशंकर परसाई

लेखक परिचय :

हिन्दी साहित्य में हास्य-व्यंग्य विधा को नया रूप और नया आयाम देने वाले हरिशंकर परसाई जी का जन्म 22 अगस्त 1924 ई० को मध्यप्रदेश के होशंगाबाद जिले के जमानी गांव में हुआ था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा सुचारू रूप से नहीं हो सकी। इनका प्रारम्भिक जीवन संघर्षपूर्ण रहा। पिता की बीमारी के कारण परिवार की आजीविका के लिए इन्हें नौकरी करनी पड़ी। नागपुर विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम.ए. करने के बाद उन्होंने अनेक स्थानों पर अध्यापन कार्य किया। बाद में इन्होंने नौकरी छोड़कर स्वतंत्र लेखन को अपना लिया। जबलपुर में रहते हुए 'वसुधा' नामक साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन एवं सम्पादन शुरु किया। आर्थिक हानि उठाने के कारण उन्हें 'वसुधा' का प्रकाशन बंद करना पड़ा।

परसाई जी की प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं — हँसते हैं रोते हैं, जैसे उनके दिन फिरे, उनके कहानीसंग्रह हैं। रानी नागफनी की कहानी, तट की खोज उनके उपन्यास हैं। तब की बात और थी, भूत के पाँव पीछे, बेइमानी की परत, पगडंडियों का जमाना, शिकायत मुझे भी है, निठल्ले की डायरी उनके निबंध संग्रह हैं। वैष्णव को फिसलन, तिरछी रेखाएँ, ठिठुरता हुआ गणतंत्र, विकलांग श्रद्धा का दौर, प्रेमचंद के फटे जूते, माटी कहे कुम्हार से, आवारा भीड़ के खतरे, सदाचार का ताबीज, तुलसीदास चंदन घिसैं आदि उनके व्यंग्य लेख हैं।

विकलांग श्रद्धा का दौर के लिए उन्हें साहित्य अकादमी का पुरस्कार से सम्मानित किया गया। सहज एवं सरल भाषा में समाज की विसंगतियों और कुरीतियों पर हास्य व्यंग्य के माध्यम से चुटीला प्रहार परसाई जी की अन्यतम विशेषता है। 10 अगस्त 1995 ई० को इस महान रचनाकार का देहान्त हो गया।

हे पत्थर पूजनेवालों! तुम्हें जिन्दा आदमी की बात सुनने का अभ्यास नहीं; इसलिए मैं मरकर बोल रहा हूँ। जीवित अवस्था में तुम जिसकी ओर आँख उठाकर नहीं देखते उसकी सड़ी लाश के पीछे जुलूस बनाकर चलते हो। जिन्दगी-भर तुम जिससे नफरत करते रहे उसकी कब्र पर चिराग जलाने जाते हो। मरते वक्त तक जिसे तुमने चुल्लू-भर पानी नहीं दिया, उसकी हाड़ गंगाजी ले जाते हो। अरे, तुम जीवन का तिरस्कार और मरण का सत्कार करते हो। इसीलिए मैं मरकर बोल रहा हूँ। मैं नर्क से बोल रहा हूँ।

मगर मुझे क्या पड़ी थी कि जिन्दगी भर बेजुबान रहकर, यहाँ नर्क के कोने से बोलता! पर यहाँ एक बात ऐसी सुनी कि मुझ अभागे की मौत को लेकर तुम्हारे यहाँ के बड़े-बड़े लोगों में चखचख हो गयी। मैंने

सुना कि तुम्हारे यहाँ के मन्त्री ने संसद में कहा कि मेरी मौत भूख से नहीं हुई, मैंने आत्महत्या कर ली थी। मारा जाऊँ और खुद ही मौत का जिम्मेदार ठहराया जाऊँ? भूख से मरूँ और भूख को मेरे मारने का श्रेय न मिले? 'अन्न! अन्न' की पुकार करता मर जाऊँ और मेरे मरने के कारण में भी अन्न का नाम न आवे? लेकिन खैर, मैं यह सब भी बरदाश्त कर लेता। जिन्दगी-भर तिरस्कार का स्वाद लेते-लेते सहानुभूति मुझे उसी प्रकार अरूचिकर हो गयी थी जिस प्रकार शहर के रहनेवाले को देहात का शुद्ध घी। लेकिन आज ही एक घटना और यहाँ इस लोक में घट गयी।

हुआ यह कि स्वर्ग और नर्क को जो दीवार अलग करती है, उसकी सेंध में से आज सबेरे मेरे कुत्ते ने मुझे देखा और 'कुर-कुर' करके प्यार जताने लगा। और मेरे आश्चर्य और क्षोभ का ठिकाना न रहा कि मैं यहाँ नर्क में और मेरा कुत्ता उस ओर स्वर्ग में! यह कुत्ता-मेरा बड़ा प्यारा कुत्ता, युधिष्ठिर के कुत्ते से अधिक! जब से मेरी स्त्री एक धनी के साथ भाग गयी थी तभी से यह कुत्ता मेरा संगी रहा, ऐसा कि मरा भी साथ ही। कभी मुझे छोड़ा नहीं इसने। बगल का सेठ इसे पालना चाहता था, सेठानी तो इसे बेहद प्यार करती थी, पर यह मुझे छोड़कर गया नहीं, लुभाया नहीं। सो मुझे सुख ही हुआ कि वह स्वर्ग में आनन्द से है पर मेरे अपने प्रति किये गये अन्याय को तो भुलाया नहीं जा सकता। और भाई यह तुम्हारा मृत्युलोक तो है नहीं जहाँ फरियाद नहीं सुनी जाती, जहाँ फरियादी को ही दण्ड दिया जाता है, जहाँ लालफीते के कारण आग लगने के साल-भर बाद बुझाने का आर्डर आता है। यहाँ तो फरियाद तुरन्त सुनी जाती है। सो मैं भी भगवान के पास गया और प्रार्थना की, "हे भगवान्! पृथ्वी पर अन्याय भोगकर इस आशा से यहाँ आया कि न्याय मिलेगा, पर यह क्या कि मेरा कुत्ता तो स्वर्ग में और मैं नर्क में! जीवन-भर कोई बुरा काम नहीं किया। भूख से मर गया, पर चोरी नहीं की। किसी के आगे हाथ नहीं फैलाया। और कुत्ता-जैसे कुत्ता होता है वैसा ही तो यह। कई बार आपका भोग खाते पिटा यह! और इसे आपने स्वर्ग में रख दिया।"

और भगवान ने एक बड़ी बही देखकर कहा कि इसमें लिखा है कि तुमने आत्महत्या की! मैंने कहा कि नहीं महाराज, मैं भूख से मरा। मैंने आत्महत्या नहीं की। पर वे बोले,"नहीं, तुम झूठ बोलते हो। तुम्हारे देश के अन्न-मंत्री ने लिखा है कि तुमने आत्महत्या की। तुम्हारे शरीर के पोस्टमार्टम से यह बात सिद्ध हुई है।" और भगवान आसमान से गिरते-गिरते बचे, जब मैंने कहा कि महाराज, यह रिपोर्ट झूठ है। मेरा पोस्टमार्टम हुआ ही नहीं। अरे मैं तो जला दिया गया था। इसके दस दिन बाद संसद में प्रश्नोत्तर हुए। तो क्या मेरी राख का पोस्टमार्टम हुआ? और तब मैंने उन्हें पूरा हाल सुनाया।

लो तुम भी सुनो। तुम नहीं जानते मैं कहाँ जिया, कहाँ रहा, कहाँ मरा? दुनिया इतनी बड़ी है कि कोई किसी का हिसाब नहीं रखता।

और तुम क्या जानो कि जब मेरी साँस चलती थी तब भी मैं जिन्दा था। मैं इस अर्थ में जीवित था कि मैं रोज मृत्यु को टालता जाता था। वास्तव में तो मैं जन्म के पश्चात् एक क्षण ही जीवित रहा और दूसरे क्षण से मेरी मौत शुरु हो गयी। तो बाजार की उस अट्टालिका को तो जानते हो। उसी के पीछे एक ओर से पाखाना साफ करने का दरवाजा है और दूसरी ओर दीवार के सहारे मेरी छपरी। अट्टालिका का मालिक मेरी

छपरी तोड़कर यहाँ भी अपना पाखाना बनाना चाहता था। अगर मैं मर न जाता तो गरीब आदमी की झोपड़ी पर अमीर के पाखाने की विजय भी इन आँखों से देखता। अब तो तुम मेरा स्थान जान गये होगे–आदमी से अधिक तो तुम अट्टालिका को पहचानते हो। अट्टालिका के सहारे आदमी को जानना तो तुम्हें खूब आता है।

बस यहीं झोंपड़ी में रहा मैं। मेरे आसपास अन्न–ही–अन्न था। दीवाल के पार से जो चूहे आते वे दिन–पर–दिन मोटे होते जाते और दो रोज तक तो वे इसलिए नहीं आये कि निकलने का थोड़ा मार्ग बनाते रहे। पर मैं फिर भी भूखा रहा। बेकार था। अनाज दस रुपये सेर था। इससे तो मेरे लिए मौत सस्ती थी।

आखिर मेरी मौत भी आयी। जिस दिन आयी, उस दिन अट्टालिका के उस पार वाले रईस के लड़के की शादी थी। बड़ा अमीर था। सारा गाँव जानता था कि उसके पास हजारों बोरे अन्न था, पर कोई कुछ नहीं कहता था। पुलिस उसकी रक्षा करती थी। और उस दिन मेरी मौत धीरे–धीरे काला पंजा बढ़ाती आती थी। मेरे पेट में ऐंठ आयी, आँखें धुँधली पड़ी। दीवाल के उस पार पकवानों की सुगन्ध आ रही थी। यही सन्तोष रहा कि पकवानों के बीच मेरी मौत हुई।

मौत के जरा पहले मेरा प्यारा कुत्ता बरबस दीवाल के उस पार घुस गया और पकवान खा गया। मालिक ने उसे खींचकर एक डण्डा मारा और वह कराहता हुआ मेरे पास आकर पड़ गया। चीखता रहा, चीखता रहा। मेरे भी प्राण निकल रहे थे। पर मुझे इस जानवर के सामने चीखने में लज्जा आयी। इधर मेरे पेट में आखिरी ऐंठ आयी और पंछी ने पिंजरा खाली किया, उधर मेरे कुत्ते का भी दम टूटा। डण्डे की चोट बड़े मर्म की थी। दोनों मरे, एक साथ मरे–फर्क इतना कि वह खाकर मरा और मैं बिना खाये।

उधर बारात उठी, इधर चाण्डालों ने टीन की गाड़ी में मुझे पटककर घसीटा। सड़क के उस ओर से अमीर के लड़के की बारात जा रही थी, इस ओर से मेरी यह सरकारी अर्थी। सरकार ने भोजन का प्रबन्ध नहीं किया था, पर मरनेवालों की लाशों को दफनाने का इन्तजाम बहुत अच्छा किया था। उधर बारात के पीछे मंगलगान हो रहा था। मेरी लाश के पीछे एक भी रोनेवाला नहीं था। ऐसी सफाई से मरा कि किसी को कष्ट न हुआ; कुत्ते तक को नहीं। बारात पहुँच गयी थी। गोले छूट रहे थे, और इधर अपर्याप्त लकड़ी में मेरी हड्डियाँ चटचटा रही थीं।

ऐसा मरा। और मरकर यहाँ जब आया तो मुझे कुछ दुख नहीं हुआ, जब मैं नर्क में भेज दिया गया। मैंने प्रतिवाद करना सीखा नहीं था और यह स्थान भी उससे ज्यादा खराब नहीं था जहाँ मैं जिन्दगी–भर रह चुका था।

कहानी भगवान् ने सुनी। बोले, तुम भूख से मरे न? फिर भी तुम नर्क में रहोगे। और कुत्ता, स्वर्ग में रहेगा। और यह तुम्हारे बगल का कमरा उस झूठे मन्त्री के लिए खाली होगा।

मैंने पैर पकड़ लिये। बोला, ''भगवान, यह कैसा न्याय है!''

वे बोले, ''मूर्ख कायर, तू कुत्ते से भी हीन है। बेचारा कुत्ता दीवाल को लाँघकर घुस गया और खाना खा आया। और तू आदमी कहलाने वाला, हाय–हाय करके मर गया। तू दीवाल लाँघ नहीं सकता था? दीवाल तोड़ नहीं सकता था?''

''लेकिन भगवान्!'' मैंने कहा, ''वह दीवाल कैसे तोड़ता? कैसे लाँघता? यह पाप न होता?''

भगवान ने क्रोध से कहा, '' पाप-पुण्य के झमेले में पड़नेवाले कायर! वह दीवाल क्या मेरी बनायी हुई है? तमाम दीवालें आदमियों ने खड़ी की हैं? और तू उन्हें तोड़ने में पाप-पुण्य देखता है? मूर्ख! तेरा कुत्ता तुझसे ज्यादा समझदार है। वह घुस गया, खाया और डण्डे की मार से मरकर यहाँ आ गया। उसमें मनुष्यत्व है, तुझमें पशुत्व भी नहीं! मैंने तुम्हें बुद्धि दी है, हाथ-पैर दिये हैं, कार्य शक्ति दी है और तू अकर्मण्य, बुजदिल कीड़े-सा मर गया। मनुष्यों ने मुझे बहुत निराश किया, अब मैं कुत्ते-ही-कुत्ते निर्माण करने का विचार कर रहा हूँ। तुम जैसे अकर्मण्य, कायर, भीरु, मूर्ख को नर्क नहीं तो क्या इन्द्रासन मिलेगा?''

मैं नर्क में ढकेल दिया गया। और मैं इस कोने से तुमसे कह रहा हूँ कि हे। मेरे देशवासियों! मेरी जैसी मौत न मरना, मेरे कुत्ते की तरह मरना।

बिगड़ैल बच्चे

मनीषा कुलश्रेष्ठ

लेखिका परिचय :

मनीषा कुलश्रेष्ठ आज की नई पीढ़ी के उल्लेखनीय कथाकारों में से एक हैं। उनका जन्म 26 अगस्त 1967 ई० को राजस्थान के जोधपुर में हुआ। उन्होंने बी.एस.सी. करने के पश्चात् हिंदी में एम.ए. तथा एम. फिल किया है। सामाजिक व राजनीतिक सरोकार को व्यक्त करती उनकी रचनाएँ, लीक से हटकर विस्तृत पृष्ठभूमि पर आधारित हैं।

उनकी प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं — बौनी होती परछाइयाँ, कठपुतलियाँ, कुछ भी तो रूमानी नहीं आदि उनके कहानी संग्रह हैं। शिगाफ, शाल भंजिल तथा पंचकन्या इनके उपन्यास हैं। उनकी कहानी 'कठपुतलियाँ' का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद किया गया है। उन्होंने विदेशी रचनाओं का हिन्दी में अनुवाद भी किया है।

मनीषा जी अनेक पुरस्कारों से सम्मानित हुई हैं । उन्होंने विश्व हिंदी सम्मेलन में भी भागीदारी की है। हिंदी नेस्ट कॉम नामक हिंदी वेब पत्रिका के संपादन कार्य में संलग्न हैं तथा वर्धा विश्वविद्यालय की वेबसाइट की निर्माता तथा देखरेख में संलग्न हैं।

वे तीन युवा सुबह-सुबह छह बजे पिंक सिटी ट्रेन में मेरे बाद चढ़े थे। रेल के इस सबसे पीछे वाले, सुनसान पड़े डिब्बे की मानो रुकी हुई साँसे एकाएक चल पड़ी हों... तेज स्वर में बातचीत, छेड़छाड़ करते हुए वे तीनों सामान स्वयं लादे, विदेशी पर्यटकों की नकल में साफ-साफ देशी नजर आ रहे थे। बात-बात में... फकिन...फकअप...फकऑल... ! मुझे बहुत नागवार गुजर रहा था।

आते ही धम्म से उन्होंने सारा सामान सामने की सीट पर पटक दिया। एक खुल्लम-खुल्ला-सी मध्यवर्गीय मगर आधुनिक किस्म की लापरवाही उनकी हर बात से झलक रही थी। चाहे वह बातचीत का लहजा हो या सामान फेंकने का ढंग हो, चाल-ढाल या कि बाल हों, चप्पलें हों चाहे बिना मोजों वाले जूते हों या...फेडेड जीन्स हो। वे जो कर रहे थे उनकी नजर में फैशन था, आधुनिकता थी। इस आधुनिकता में उनका मध्यवर्गीय अभाव कुछ ढक रहा था तो कुछ उघड़ रहा था।

पिंकी सिटी दिल्ली के सरायरोहिल्ला स्टेशन से सीधे छह बजे चलती है और दोपहर तीन बजे जयपुर पहुँचती है, सो सुबह साढ़े पाँच बजे ही मुझे मेरा बेटा ट्रेन में बिठाकर सामान व्यवस्थित कर, सामने के स्टाल

से एक कप एस्प्रेसो कॉफी लाकर, मुझे पकड़ाकर चला गया था। पहले से बैठा... बल्कि खाली बैठा भारतीय यात्री... उस पर महिला यात्री और फिर मेरे जैसा कल्पनाशील यात्री, हर नये चढ़नेवाले यात्री की वेशभूषा, शक्ल, बातचीत के लहजे, नामों के चलन के अनुसार उसका प्रदेश–परिवेश भाँपने का प्रयास करता है। यकीन मानिए बस वैसा ही कुछ मैं भी कर रही थी। अजीब किस्म का शौक है ना... दूसरों के मामले में नाक घुसाने का नितान्त भारतीय शौक।

निश्चित रूप से तीनों गोआ के निवासी लग रहे थे, केवल शक्लो–सूरत से ही मैंने यह निश्चय नहीं किया था... क्योंकि लड़की ने जो टी–शर्ट पहनी थी उस पर सामने ही लिखा था — ''माय गोआ, द हैवन ऑन द अर्थ'। गले में काले धागे में चाँदी का बड़ा–सा क्रॉस लटका हुआ था। यही नहीं वे कभी अंग्रेजी में और कभी कोंकणी भाषा में बात कर रहे थे। अपने गिटार, कैमरा, वॉकमैन के अलावा तीन पुराने से बैग, ढेर सारे चिप्स के पैकेट और कोल्ड ड्रिंक की बॉटल्स और कुछ पत्रिकाएँ लेकर वे तीनों चढ़े थे... अब वे मेरे एकदम सामनेवाली सीटों पर अस्त–व्यस्त से जम गये। एक लड़की तो थी ही, बाकी दो लड़के थे। एक छोटा, एक बड़ा।

तीनों उत्तर भारत के टूरिस्ट मैप पर सिर जोड़कर नजर गड़ाकर कुछ कार्यक्रम बना रहे थे... कोंकणी में। लापरवाही से उनका कैमरा सीट के कोने में रखा था, मैं मन–ही–मन कुनमुनायी, लगता है इन्हें उत्तर भारत... खासतौर पर दिल्ली के जेबकतरों–उठाईगीरों का कोई अनुभव ही नहीं है या कभी कुछ सुना भी नहीं। मैंने सोचा आगाह करूँ... पर मेरी तरफ डाली गयी उनकी उदासीन दृष्टि अब तक मुझे चिढ़ा गयी थी सो मैंने सोचा—'हाँ मुझे क्या पड़ी है।'

मैप देखने के बाद तीनों अपनी–अपनी जगह पर खिसक गये। बैग ऊपर वाली बर्थ पर लापरवाही से फेंक दिए गये थे। गिटार बड़ेवाले लड़के ने अपने गोद में बहुत प्यार से रख लिया जैसे कोई पालतू जानवर हो। वॉकमैन छोटे ने कान पर लगा लिया, खाने–पीने का सामान लड़की ने अपने पास के बैग में डाल लिया था। लड़की साँवली होने के बावजूद आकर्षक थी। दरम्याने कद की, पतली और प्यारी सी। हाँ, बाल बेढंगे से थे... घुँघराले काले बालों के बीच की कई लटें कत्थई और सुनहरे रंग में रंगा रखी थी। मुझे अपने कॉलेज की मिसेज बतरा याद आ गयीं, वो अपने खिचड़ी बालों में मेहँदी लगाकर जब उन्हें रंग लेती थीं तो उनकी सफेद लटें ऐसी ही लगा करती थीं, कुछ सुनहरी, कुछ लाल, कुछ काली... पर यह फैशन है आजकल का, बेढंगा फैशन! मेरे अन्दर की प्रौढ़ होती महिला किचकिचाई।

लड़कों में से छोटा लड़का, चेहरे–मोहरे से उसका भाई लग रहा था, हाँ भई... उसकी नाक और होठों की बनावट बिलकुल लड़की जैसी ही थी... वह लड़की जरा लुनाई लिये हुए साँवली थी और यह बिल्कुल काला, वही... जिसने कानों में अब वाकमैन के इयर प्लग लगा रखे थे और पैर हिलाते हुए गुनगुनाता जा रहा था। ... कभी–कभी वह आसपास के वातावरण से बेखबर जरा ऊँची आवाज में गाने लगता था.. तब लड़की उसे कोहनी मार देती थी।

बड़े लड़के के हाथ गिटार के तारों को हल्के-हल्के सहला रहे थे। वह कोई अंग्रेजी गीत गुनगुना रहा था और मीठी नजरों से लड़की को देख रहा था। लड़की ने मुस्कुराकर नजरें खिड़की के बाहर दौड़ा दीं। स्टेशन पर चहल-पहल बढ़ गयी थी। जिस खिड़की के पास वह लड़की बैठी थी... दो चार सड़क छाप मनचले मँडराने लगे थे। ठेठ सड़कछाप हिन्दी के कुछ गन्दे फिकरे कसे गये जो लड़की को समझ नहीं आये पर वह लड़की होने की छठी इन्द्रिय से समझ गयी कि उसके कपड़ों पर कुछ कहा गया है। उसने आधी खुली पीठ वाला, छोटा सा, बड़े गले का नाभिदर्शना टॉप पहना हुआ था। नाभि में चाँदी की बाली पहनी हुई थी। बड़ा लड़का उसका असमंजस तुरन्त समझ गया, आवेश की हल्की परछाई उसके चेहरे पर आयी। उसने उसे बैग में से निकालकर एक लम्बी बाँह की शर्ट पकड़ा दी थी। फिर छोटे लड़के को खिसका कर खिड़की के पास बिठा दिया था। लड़की को बीच में बिठाकर वह उसके एकदम करीब कन्धों पर अपनी बाँह का सहारा देकर बैठ गया। लड़की ने लापरवाही से उसकी दी हुई टी-शर्ट को पहन लिया था, लेकिन बिना बटन लगाये।

अब तक ट्रेन ने सीटी दे दी थी। जिन्हें इस ट्रेन में चढ़ना था, चढ़ गये थे और अपनी-अपनी जगह खोजने लगे थे। यह एक सेकेण्ड क्लास का डिब्बा था। मेरे बगल में एक अधेड़ सज्जन आ बैठे थे... और उनकी पत्नी भी। छोटा लड़का अब एकदम मेरे सामने था... उसने हरा बरमूडा और फूलों की छींट वाली पीली शर्ट पहन रखी थी। सामने के कुछ खड़े बाल सुनहरे होने की हद तक ब्लीच किये हुए थे। ट्रेन चलते ही इस छोटे लड़के ने वॉकमैन की आवाज बढ़ा दी थी। इतनी कि मैं तक सुन पा रही थी। एक घना शोर और बीच-बीच में किसी पॉप गायिका की आवाज। एक मिनट बाद जब मुझसे शोर सहन नहीं हुआ तो मैंने उसके पास थोड़ झुककर पूछ ही लिया, 'मैडोना है न ?' मैंने सोचा वह बात में छिपे व्यंग्य को समझेगा और आवाज धीमी कर देगा।

'हँह...', उसने कहा।

लड़की ने सिर हिलाया बुरा-सा मुँह बनाया और कहा, ''शी इज नॉट फॉर अवर जेनरेशन... ही लाइक्स शकीरा एण्ड ब्रिटनी।''

मैं साथ लायी किताबों में से कुछ भी नहीं पढ़ पा रही थी। पन्द्रह मिनट तक मैं वह कानफाड़ू संगीत सुनती रही। अधेड़ व्यक्ति मेरी परेशानी भाँप रहे थे। उन्होंने छोटे लड़के के घुटनों पर थपथपाया। उसने इयरफोन हटाया और उनकी तरफ चिढ़े हुए अन्दाज में देखने लगा। संगीत इयरफोन्स में से निकलकर ट्रेन के सरपट संगीत से पूरा टक्कर ले रहा था।

''फॉर एवर... फॉर एवर... टंन टन्नना''

''टों... छक छक छुक छुक... टटटूँ।''

''अगर तुम इतना तेज म्यूजिक सुनोगे तो तुम्हारे कान खराब हो जाएँगे।'' अधेड़ सज्जन ने विनम्रता से धीरे से कहा।

लड़के ने सिर हिला दिया, यह संकेत देते हुए कि, पहली बात तो वह कुछ सुन नहीं पा रहा दूसरे उसे हिंदी नहीं समझ आती।

उन्होंने थोड़ी तेज आवाज में अंग्रेजी में कहा — ''इफ यू विल लिसन लाउड म्यूजिक योर हियरिंग विल बी डैमेज्ड।''

''व्हाट ?'' उसने तेज आवाज में पूछा और वॉकमैन बन्द कर दिया।

''ही इज सेइंग... यू आर गोइंग टू रुइन योर हियरिंग, इफ यू विल कंटीन्यू प्ले म्यूजिक सो लाऊड।'' मैं सन्नाटे में जोर से चीख पड़ी।

अचानक वे तीनों जोर से हँस पड़े। छोटे लड़के ने हँसी रोकते हुए टूटी-फूटी हिंदी में गोअन ढंग से कहा — 'अच्छा... शुक्रिया।' और इयरफोन को गले से लटका लिया और वॉकमैन बरमूडा की लम्बी लटकती जेब में डाल लिया, जिससे वह और लटक गयी।

मैं झेंपकर उठ खड़ी हुई और हैंड टॉवेल लेकर बाथरूम जाने का उपक्रम करने लगी। मेरे मुड़ते ही आवाज आयी... 'व्हाट फकिन कन्सर्न दे ओल्डीज हैव ?' यह आवाज लड़की की थी। 'शटअप लीजा। शी इज राइट' यह गम्भीर आवाज बड़े लड़के की थी।

मैं बाथरूम से लौटी तो बड़ा लड़का 'डेबॉनेयर' का सेंटरस्प्रेड देख रहा था। लड़की भी साथ झुकी थी... बीच-बीच में बड़े लड़के की धीमी आवाज में की गयी किसी टिप्पणी पर वह उसके बाल खींच देती या पीठ पर मुक्का जमा देती। वह अधेड़ सज्जन और उनकी पत्नी अब मेरी ओर सहानुभूति के साथ मुखातिब थे। आपसी परिचय से पता चला कि वे डॉक्टर हैं। उनकी पत्नी अध्यापिका।

''यह हाल है हमारे देश की युवा पीढ़ी का!'' यह डॉक्टर साहब कह रहे थे। ''दिन पर दिन बदतमीज होते जा रहे हैं। संस्कार बचे ही नहीं।'' उनकी पत्नी ने अपने में मशगूल उस युवा त्रयी को घूरकर देखकर कहा। छोटा लड़का थोड़ा झिझका और प्रतिक्रिया में उसने अपने जाँघ तक ऊँचे चढ़ गये बरमूडा को नीचे खींच लिया और खिड़की के बाहर देखने लगा।

''हमारी भी गलती है... हमारे पास समय कहाँ है, जो इन्हें संस्कारों का पाठ पढ़ाएँ।'' मैंने ठंडी साँस लेकर कहा।

''देखने में तो मिडल क्लास लग रहे हैं... पर फैशन और रहन-सहन देखो। ये लोग तो होते ही ऐसे हैं। देख रही हैं न कितनी बेशर्मी से गन्दी-गन्दी किताबें देख रहे हैं, बड़े-बूढ़ों का लिहाज ही नहीं।'' डॉक्टर की पत्नी ने फुसफुसाकर कहा।

''बात एक जाति की नहीं है, हमारी यंग जेनरेशन पूरी की पूरी ही ऐसी है। कुछ वेस्टर्न कल्चर का असर था, बचा-खुचा टी.वी. चैनलों ने पूरा कर दिया। इन लोगों को इतनी छूट है, हमें कभी थी क्या ?'' डॉक्टर ने कहा।

''हाँ, हर पीढ़ी में अच्छाइयाँ और बुराइयाँ रही ही हैं।

''हाँ जी, पर यह पीढ़ी तो... इनमें समझदारी नाम मात्र को नहीं है। देखो इन्हें... बस फालतू जोश। कुछ कर दिखाने, कुछ बनने-बनाने की न तो काबिलियत है, न अक्ल, न हिम्मत। सोशल वेल्यूज के नाम पर जीरो... ''अपनी तर्जनी अँगूठे से जोड़कर उन्होंने जीरो बनाकर दिखाया तो वह युवा त्रयी उन्हें आश्चर्य से देखने लगी। ''दरअसल ये लोग भोगवाद में विश्वास करते हैं... जो आज मिल रहा है भोग लो... कैसे भी पैसा कमाओ और खर्च कर लो... मजे करो बस। बाकी दुनिया जाए भाड़ में। डॉक्टर की पत्नी उन्हें घूर-घूरकर कोस रही थीं। वे तीनों समझ रहे थे कि हमारी बात का विषय वे तीनों ही हैं...। शायद इसलिए छोटा लड़का वॉकमैन सुनते-सुनते जोर से गाने लगा था और उन्हें चिढ़ाते हुए वह लड़की-लड़के से एकदम सटकर बैठ गयी। लड़का गिटार पर कोई गोअन धुन बजाने लगा था।

''भोगवाद कहें या भौतिकवाद... इससे हम भी कहाँ अछूते हैं? हाँ पर यह युवा पीढ़ी कुछ ज्यादा ही लापरवाह है। जो भी हो इन्हीं पर हमारा भविष्य टिका है।''

''भविष्य! ये युवा हमें वृद्धाश्रम के अलावा क्या देंगे? महास्वार्थी है यह पीढ़ी। पहले कभी हमने भारत में वृद्धाश्रमों का नाम तक सुना था? हमारी सास तो आखिर तक हमारी छाती पर... मेरा मतलब हमारे साथ रहती रहीं।

डॉक्टर ने सिर हिलाया और किसी सोच में डूब गये। मानो उनकी पत्नी ने पते की बात कही थी। फिर अखबार उठाकर पढ़ने लगे। उनकी स्थूल पत्नी नाश्ते का सामान सजाने लगी थी। ''लीजिए न कुछ।''

''जी नहीं... मेरा व्रत है।'' मैं सफाई से झूठ बोल गयी। बचपन से माँ की बँधाई हुई गाँठ 'सफर में अजनबी से कुछ लेकर मत खाना' कस गयी।

डॉक्टर ने तीनों युवाओं से एक औपचारिक आग्रह किया... उन तीनों ने बिना संकोच के एक-एक पूरी उठा ली और खाने लगे। मुँह में पूरी ठूँसे-ठूँसे लड़की ने कहा, ''वैरी डैलीशियस आँटी, विच काइंड ऑफ पिकल इज दिस? कहकर एक पूरी उठा ली। उस पर उँगली से अचार फैलाकर रोल बनाने लगी।

''टैंटी। वे उदासीनता से बोलीं।

''व्हाट... टी?''

''टैंटी... ए वाइल्ड फ्रूट।'' डॉक्टर ने समझाया।

''ओह आई थॉट... दीज आर सी-फिशेस एज।''

''नो नो, वी आर प्योर वेजेटेरियन्स।'' कहकर अध्यापिका महोदय ने अपना टिफिन उनके सामने से खींच लिया और मेरी तरफ मुँह करके खाने लगी। मैं खिड़की से हटकर बैठ गयी।

क्री... किच करके ट्रेन रुक गयी। शायद चेन पुलिंग थी। यह दिल्ली के बाहर का औद्योगिक क्षेत्र था। यह तो रोज का किस्सा है — अनेक स्थानीय यात्री इस ट्रेन और फिर आठ बजे तक दिल्ली से चलनेवाली हर ट्रेन में चढ़कर आते हैं फिर बार-बार चेन खींची जाती है। दो घंटों में भी दिल्ली की सीमा से ट्रेन बाहर नहीं निकल पाती। शाम की ट्रेन में भी यही हाल रहता है। काफी समय तो बरबाद होता ही है, साथ

ही ये लोग प्रथम श्रेणी से लेकर आरक्षित शायिकाओं तक हर जगह घुसे चले आते हैं। फिर यात्रियों के साथ बदतमाजी से पेश आते हैं। कोई लड़की या सुन्दर महिला यात्री दिख जाए तो उससे सटकर बैठ जाएँगे। उसके संरक्षक आपत्ति करें तो झगड़ा... फिर तो ये लोग ट्रेन को चलने ही नहीं देंगे। ट्रेन में तोड़-फोड़ करेंगे। यह व्यवस्था का ऐसा सुराख है जो बन्द नहीं हो सकता। सालों पुराना चलन है। यही देखते-देखते मैं युवा से प्रौढ़ हो चली हूँ। आज भी मुझे इन लोगों से डर लगता है।

वो तो सौभाग्य से यह डिब्बा बहुत पीछे था सो इस डिब्बे में कोई झुंड नहीं चढ़ा... नहीं तो इस लड़की के कपड़ों और अदाओं पर यहाँ तो कत्ल हो जाते... और इसके ये दो मरगिल्ले से संरक्षक कुछ नहीं कर पाते। हिंदी तक तो ठीक से समझ बोल नहीं पाते।

मैं भी सोचने लगी, ये खुलापन, इनकी इस कदर लापरवाही क्या इन्हें खतरों की तरफ नहीं ढकेलती? पढ़ाई, काम-धन्धा कुछ करते भी हैं कि नहीं? उम्र तो देखो, मुश्किल से अठारह-उन्नीस के होंगे, छुटका तो पन्द्रह का-सा लगता है। उस पर कैसे होंगे वे दु:साहसी माता-पिता जिन्होंने इन्हें अकेले दुनिया देखने भेज दिया। ये ही शायद ऐसे हैं... विद्रोही किस्म के बिगड़ैल बच्चे। मन किया कि मैं भी कहूँ 'ब्लडी फकिन ब्रैट्स!'

हमारे भी सहपाठी, सहकर्मी क्रिश्चियन रहे हैं... पर हमने उनमें ऐसा खुलापन कभी नहीं देखा। क्या ये किसी मुसीबत को समझदारी से सुलझा सकेंगे? खतरों से बच सकेंगे? छोड़ो... मुझे क्या पड़ी है? भाड़ में जाएँ। अच्छा ही हुआ जो मैंने अपने बेटे-बेटी को बहुत संयम और कठोर अनुशासन में पाला है। बेटा तो चलो ठीक है दिल्ली आई.आई.टी. में पढ़ रहा है, निशि...!!

मैंने एक ठंडी साँस ली... ट्रेन धीमे-धीमे सरक रही थी।

मैंने स्वयं से सवाल पूछा... क्या मैंने बच्चों को सुरक्षित और कठोर अनुशासन में रखकर बहुत महान काम किया है? क्या निशि इस कठोर अनुशासन और अतिरिक्त सुरक्षित वातावरण में पलकर बेहद दब्बू बनकर नहीं रह गयी है? बस शादी कर देने भर से क्या उसे सुरक्षित कर दिया हमने? अपनी होनहार एम.बी.ए. लड़की को मुम्बई जाकर एक मल्टीनेशनल कम्पनी में नौकरी... या फिर कह दिया शादी के बाद कर लेना नौकरी वह भी पति चाहे तो।

अब वह एक-एक पैसे को पति का मुँह देखती है, कहने को बड़ा बिजनेस है उसके परिवार में पर तीन भाइयों में सबसे छोटा उसका पति हमेशा बेवकूफ बनता है। खाने-पीने की कमी नहीं, बड़ा घर है, संयुक्त परिवार है। पर निशि अपने आप से कुछ खरीदना चाहे, कहीं घूमने जाना चाहे... वह सब नहीं हो पाता। मायके तक अब उसे अकेले ट्रेन में बच्चों के साथ आने में डर लगता है, दामाद के पास फुरसत नहीं कि वह छोड़ जाए। बस उसी को तो लेने जा रही हूँ, निशि के पापा डायबिटिक हैं, वे घर से नहीं निकलते।

आज निशि आर्थिक रूप से स्वतन्त्र होती तो... निशि को उन्होंने उसकी पसन्द से शाादी करने दी होती तो! तो... आज निशि का चेहरा इस सामने बैठी लड़की-सा चमकता! सत्ताईस साल की उमर में वह पैंतीस की नहीं लगती... हर समय एक स्थायी हताशा उसके चेहरे पर नहीं होती... लेकिन... ये बेहयाई... खतरों को आमन्त्रित करता खुलापन...! मैं असमंजस में थी। मुझे निशि के हालात पर रोना आने लगा था।

सामने की सीट पर बड़ा लड़का और लड़की एक-दूसरे पर ढलके सो रहे थे। डेबोनियर के ऊपर हैल्थ और रीडर्स डाइजेस्ट भी रखी थी... चिप मैग्जीन अधखुली ट्रेन के फर्श पर लोट रही थी। तो... आज का युवा सब कुछ पढ़ता है! छुटके ने फिर वॉकमैन चला लिया था पर इस बार थोड़ा कम लाउड। डॉक्टर और उसकी पत्नी बड़ी तल्लीनता से रमी खेल रहे थे। मुझे अपना आप अचानक बहुत अकेला लगा। पैर लटके-लटके सूज आये थे... बल्कि सुन्न पड़ने लगे थे, मैंने उन्हें ऊपर कर लिया। ट्रेन तेज तफ्तार से उष्ण कटिबन्धीय जंगलों से गुजर रही थी। अप्रैल का महीना था, मौसम गर्म होने लगा था। सुबह के दस बजे ही दोपहर का सा अहसास हो रहा था। भूख भी लग आयी थी। पर मेरे पास क्या धरा था? तीन सेब, एक सैंडविच, एक भूला-भटका चायवाला उधर से गुजरा तो मैंने उसे रोक लिया। मेरे पास खुले पैसे नहीं थे। छुटके से पूछा तो उसका जवाब था — ''वन मिनट...'' जेब से उसने तीन रुपये निकालकर चुका दिये।

मैंने कहा भी, ''आय नीड चेन्ज ऑनली।''

''कमॉन मॉम'' कहकर वह खी-खी हँसने लगा।

''सैंडविच।''

''नो थैंक्स... '' कहकर उसने जेब से भुने हल्के-हल्के छिलकों वाले नमकीन काजू निकाले और मेरी प्लेट में रख दिये। मैंने आश्चर्य में भरकर कृतज्ञता से कहा कि ऐसे काजू मैंने पहली बार देखे हैं बिना छिले मगर भुने हुए। उसने बताया कि उनके घर के अहाते में चार काजू के पेड़ हैं... ये काजू उन्हीं पेड़ों के हैं। आते समय मॉम ने जबरदस्ती उनके साथ बाँध दिये थे। मेरी कल्पना में एक साँवली छींट की फ्रॉक पहने, दुबली मगर हल्के से निकले पेटवाली ममतामयी क्रिश्चियन महिला की छवि तैर गयी। मैं कुछ और भी पूछना चाहती थी... एक आम भारतीय उत्सुकता के तहत उनकी निजता के पारदर्शी तरल को छूकर देखना चाहती थी। मसलन वह लड़की तुम्हारी बहन है क्या? तुम्हारी माँ ने एक पराये लड़के को तुम्हारे साथ क्योंकर भेजा होगा? कहाँ जा रहे हो? कब लौटकर घर जाओगे? और जरा बताओ तो... क्या-क्या उगा रखा है तुम्हारी माँ ने तुम्हारे अहाते में। तुम एंग्लोइंडियन गोअन क्रिश्चियन हो कि कनवर्टी? छि: यह सब पूछकर वह क्या करेगी? कहीं उसने कह दिया 'यू नटी ओल्डी... व्हाट फकिन कन्सर्न डू यू हैव विद अस?' उसे क्या? भाड़ में जाए यह और इसकी बहन। कमबख्त कैसे सटकर उस जवान-जहान लड़के से चिपकी पड़ी है।

छुटके ने उत्साह से कहा कि कोई स्टेशन आ रहा है। इक्का-दुक्का घर नजर आने लगे थे। कुछ कारखाने... ''अलवर आ गया। हाय! जल्दी में मिठाई लेना भूल गयी थी दिल्ली से... कमबख्त निशि ने भी तो अचानक फोन किया था कि मम्मी, मुझे सास ने कह दिया है, जा हो आ मायके, तुम कल ही भैया को भेज दो।''

''भैया कैसे आएगा निशि, उसके एक्जाम हैं।''

''तो माँ...'' बेचारी रूँआसी हो गयी थी।

''तू खुद चली आ ना। जयपुर से तो कई सीधी रेल हैं दिल्ली की। करा ले रिजर्वेशन।''

''मम्मी तुम तो जानती हो, दो छोटी बच्चियों के साथ ये अकेले नहीं भेजेंगे मुझे। इन्हें फुर्सत नहीं फिर बताओ न... मैं भी कैसे आ जाऊँ, कितनी दिक्कत होगी, दोनों तो गोदी चढ़ती हैं। हाय, मम्मी कितनी मुश्किल से सास का मुँह सीधा हुआ है मेरे मायके जाने के नाम पर।''

''अच्छा-अच्छा... मैं ही...''

''कल ही चल दो न माँ। कितना तरस रही हूँ मैं।''

''देखती हूँ।''

''बस फिर सुबह-सुबह ट्रेन में बैठती कि मिठाई लेती? अलवर से ही दो किलो मिल्ककेक ले चलती हूँ। वहाँ जयपुर में तो स्टेशन पर दामाद लेने आएँगे, उनके सामने मिठाई लेती भला अच्छी लगूँगी? मैंने अलवर आता देख पर्स सँभाला। छुटके से कहा कि सामान का ख्याल रखे। डॉक्टर दम्पती ऊपर की खाली बर्थ पर जाकर लेट गये थे। लड़की कुनमुनाकर लड़के से अलग हो उठकर खड़ी हो गयी थी। उठते ही चॉकलेट निकालकर खाने लगी।''

ट्रेन रुक गयी थी। डिब्बा सच में बहुत पीछे था। मिल्ककेक की दुकान दूर थी। स्टेशन पर काफी भीड़ थी। सारी भीड़ पिंकसिटी में ही समाएगी क्या? यह सोच मैं जल्दी-जल्दी ट्रेन से उतरी और लोगों से टकराते हुए... बड़े-बड़े डग भरते हुए दुकान पर हाँफती हुई पहुँची। दो-दो डिब्बे मिठाई और पर्स सँभालती हुई... मैं अपने गन्तव्य से आधी दूरी पर ही थी कि ट्रेन ने सीटी दे दी, मेरे तो हाथ-पाँव फूल गये। भीड़ को चीरती हुई मैं आगे बढ़ रही थी और मुझे दूरदर्शन का एक विज्ञापन याद आ रहा था कि भारत में स्टेशनों पर यात्रा करनेवाले कम और उन्हें छोड़ने आनेवाले ज्यादा होते हैं। उस क्षणांश में ही मुझे लग रहा था कि मैं चल नहीं पा रही... अपना डिब्बा मुझे दिखाई नहीं दे रहा... कि अचानक छोटे लड़के की चीख ने ध्यान दिलाया कि मैं डिब्बे के एकदम पास हूँ —

''आंटी!''

दरवाजे के पास भीड़ थी... मेरे पीछे भीड़ थी... मैंने किसी तरह दरवाजे का हैंडल पकड़ा और बढ़ाया ही था कि ट्रेन थोड़ा तेज रेंगने लगी, हैंडल तो हाथ नहीं आया, मैं बुरी तरह से प्लेटफार्म पर गिर पड़ी। पैर ज्यादा बढ़ गया होता तो दरवाजे पर पटरियों के बीच घिसट रही होती। गिरते-गिरते मुझे छोटे लड़के की चीख सुनाई दी थी। उसके बाद मुझ पर झुकी भीड़ एक भँवर की तरह घूमनी नजर आयी और फिर कुछ कही गड़ऽब से डूब गया।

ठंडे पानी की तेज छपाके से मैंने अपने चेतन का छोर ढूँढा और अवचेतन की सीढ़ियाँ फाँदती हुई... होश में आने की जल्दी में मैं उस आघात की पारदर्शी झिल्ली के नीचे से मुट्ठियाँ बाँध-बाँधकर चीख रही थी... जो कि अस्पष्ट गों-गों में बदलती जा रही थी। आखिरकार मेरे प्रहारों से वह झिल्ली फटी। गर्मी और उमस से भरे रेलवे के रिटायरिंग रूप में बदहवास सी चारों तरफ देख रही थी। 'आंटी आर यू ओके? डॉक, सी ओपंड हर आइज।' छोटा लड़का मेरे चेहरे से सटा फर्श पर हड़बड़ाया-सा बैठा था। उसकी आवाज में

एक नेह भरी ऊष्मा की थरथराहट थी। 'कैसी हैं, आप?' एक अजनबी, रेलवे के डॉक्टर ने पूछा, ''चिन्ता की कोई बात नहीं हैं... ये यंग्स्टर्स नहीं होते तो... इनका और खुद का शुक्रिया अदा करें। गनीमत है कि कोई सीरियस इंजरी नहीं हुई। पुराना खाया पिया काम आ गया।'' हँसकर डॉक्टर ने मेरे हवास दुरुस्त करने की कोशिश की।

''बस अभी एम्बुलेंस आती होगी।''

मैंने थोड़ा उठना चाहा तो... वह लड़की आगे आ गयी... अपनी बाँह का सहारा लिये। मैंने देखा उसकी शर्ट का बड़ा हिस्सा खून से तर था। मैंने दायी भौंह की तरफ पीड़ा महसूस की। छुआ तो वहाँ एक गीला स्कार्फ बँधा था, यह बड़े लड़के का था। दोनों घुटनों पर रूमाल बँधे थे। इतने में बड़ा लड़का पसीने में तर-ब-तर हाथ में दवाओं, पट्टियों का बंडल लेकर आ पहुँचा। 'डोंट गेटअप यू आर स्टिल ब्लीडिंग।' बड़े लड़के ने मेरी चोट पर स्कार्फ दबाते हुए कहा, ''डॉक फर्स्ट गिव हर एंटी टिटनेस इंजेक्शन।''

''यंग मैन, डोंट टीच मी माय ड्यूटीज।'' डॉक्टर ने हँसकर कहा और इंजेक्शन तैयार करने लगा। मैंने देखा, डॉक्टर छोटे कद का काला-सा अनगढ़ नक्श वाला व्यक्ति था। बार-बार खुदा के लिए... खुदा का शुक्र... किये जा रहा था। शायद मुसलमान था।''

एम्बुलेंस में मैंने हिम्मत करके लड़की से अपने गिरने के बारे में पूछ लिया।'' ओह गॉड आंटी दैट सीन वाज हॉरीबल... एक घंटा भी नहीं हुआ है अभी तो... आप तो बहुत बुरा गिरा था प्लेटफार्म पर। हाथ छूट गया हैंडल से वरना ट्रेन के साथ... लटकता जाता। वो जो मेरा फियान्सी है न, रोजर... उसने चेन पुल किया... फिर हम सब बैग-बैगेज लेकर उतरा... आपके पास पहुँच ही नई सकने का था... सब आदमी लोगों ने कवर कर रखा था, तब मेरा भाई चिल्लाकर सबको दूर भगाया और आपको रिटायरिंग रूम में लाया। रोजर स्टेशन मास्टर के रूम में रश करके भागा तब डॉक्टर आया और...।''

''तुम तीनों ने मेरे लिये ट्रेन छोड़ दी।''

''वही तो जरूरी था न। आपको उन स्टूपिड लोगों के बीच छोड़ना नहीं था न। तमाशा करके रखा था न आपका। कोई उठा नहीं रहा था...'

''वो डॉक्टर जो ट्रेन में था... ?

'वह। ब्लडी सेल्फिश फैलो।' यह छुटका था, हिज वाइफ स्कोल्ड हिम नॉट टू कम विद अस एण्ड ही स्टेड बैक। वी लिटरली प्रेड टू हिम! बट ही टोल्ड आय कान्ट डाउन, आय हैव टू रीच टुडे।'

'लीव ना कीथ। होते हैं, आन्टी सैल्फिश लोग भी। हमको हमारा मम्मी बोला इन्सान का सेवा ही यीशू का सेवा है। आप बताओ न आपकी जगह हम होते तो! आप नहीं रुकते क्या हमारे लिये?'

मैं सोच में पड़ गई थी। मैं क्या करती? मैं उतरती किसी घायल के लिये? इस उमर, सूजे हुए पैरों के साथ में किसी घायल के लिये मैं क्या कर सकती थी? ये तो जवान हैं। प्रौढ़ावस्था का बहाना खड़ा हो

जाता। प्रश्न वही था... बचपन में पढ़ी कहानी 'मनुष्य, भेड़ और भेड़िया' में से मैं क्या बनती? भेड़िया तो नहीं, इन्सान बनने की हिम्मत जुटा पाती या कि शायद... उस डॉक्टर की तरह जल्दी गंतव्य पर पहुँचने की चाह में आँखें मूंद भेड़ बनकर आगे बढ़ जाती।

लड़की बिल्कुल मेरे करीब थी, उसका खून से सना शर्ट उसके हाथों में था। बड़ा लड़का आगे डॉक्टर के पास बैठा जयपुर जाने वाली ट्रेन के बारे में बतिया रहा था?

'नो वी वोन्ट लीव हर अलोन।'

'प्लीज कम्पलीट ऑल फार्मेलिटीज एण्ड गिव हर प्रॉपर मेडिकेशन। वी हैव टू लीव दिस टुडे ऑनली। डोन्ट वरी... वी विल टेक केयर ऑफ हर।'

'नो। वी वान्ट टू लीव फॉर जयपुर एज अर्ली एज पॉसिबल। डे आफ्टर वी हैव फर्दर रिजर्वेशन्स आल्सो'।

'थैंक्स डॉक्टर।'

हम रेलवे के अस्पताल पहुँच गये थे। डॉक्टर रशीद ने... (उनका यह नाम मैंने उनके कोट पर लगे नेमटैव पर पढ़ा था। क्या करूँ यह उत्सुकता जन्मजात है।) मरहम-पट्टी कर दी थी। दो एक्स-रे भी हुए... पर डॉ० रशीद के अनुसार खुदा के फजल से सब कुछ ठीक था। अब हम तीन बजे की ट्रेन पकड़ सकते थे। उन युवा और नेक फरिश्तों ने मुझे पूरी तरह से संभाल रखा था। उन्होंने आगे के कार्यक्रमों से ज्यादा मेरी चिन्ता थी। तीनों के कपड़े मेरी वजह से खून से सन गये थे। उन्होंने अपने सामान के साथ मेरा सामान संभाल रखा था। मैंने पास पड़ी मेज पर देखा... वहाँ मेरे पर्स के पास दोनों मिठाई के डिब्बे रखे थे। तन ताजा-ताजा साफ करके पट्टी किये गये चार-पाँच और कई छोटे टीसते जख्मों और मन आपस में उलझते तरह-तरह के विचारों से थक गया था। मैंने अस्पताल के बिस्तर पर लेटे-लेटे आँखें बन्द कर ली। वे तीनों डॉक्टर के पीछे अपने कपड़े बदलने चले गए थे।

दोपहर तीन बजे की ट्रेन में हम चारों फिर से बैठे थे। स्टेशन मास्टर ने हम पर एक अहसास किया था... इस ट्रेन में एक कम्पार्टमेंट में कूपे दिलवा दिया था। डॉक्टर रशीद घर से बिरयानी का लंच पैक करवाकर पकड़ा गए थे, 'अपना ख्याल रखियेगा बहनजी' जुमले के साथ।

'वाउ... दिस इज माय फर्स्ट चान्स ह्वेन आय एम सिटिंग इन ए.सी. कम्पार्टमेन्ट।' छुटका बहुत खुश था। उसने अपना वॉकमैन निकाला और लो वॉल्यूम में शकीरा सुनने लगा।

''कीथ प्लीज रेज द वॉल्यूम, लेट मी आल्सो लिसन।' यह मैं थी।

वे दोनों युवा प्रणयी फिर एक दूसरे में मगन थे। लीजा रोजर की उंगलियों को गिटार पर फिसलते देख रही थी।

बहता पानी निर्मला

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'

लेखक परिचय :

अज्ञेय जी प्रयोगवाद के प्रवर्तक, विख्यात कवि, लेखक, पत्रकार, क्रांतिकारी, चिंतक थे। उनका जन्म 7 मार्च 1911 ई० को उत्तरप्रदेश के देवरिया जिला के अन्तर्गत कसिया गांव में हुआ था। उन्होंने बी.एस.सी. तक शिक्षा प्राप्त की और बाद में स्वाध्याय से अंग्रेजी एवं हिन्दी साहित्य का अध्ययन किया। उन्होंने सेना में नौकरी भी की। उन्होंने जोधपुर विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य भी किया। वह क्रांतिकारी एवं यायावरी प्रवृत्ति के थे। उन्होंने 'दिनमान', 'प्रतीक' और 'नवभारत टाइम्स' में सम्पादन कार्य भी किया। उन्होंने इसके अतिरिक्त प्रथम तारसप्तक (1943), दूसरा तारसप्तक (1951), तीसरा तारसप्तक (1958) और चौथा तारसप्तक (1978) का भी सम्पादन किया। उन्होंने बंगला, अंग्रेजी साहित्य की कई पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद भी किया। अज्ञेय जी ने अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से लगभग आधी शताब्दी तक हिंदी साहित्य को प्रभावित तथा आन्दोलित किया। 'साहित्य अकादमी', 'भारतीय ज्ञानपीठ', 'भारत भारती' तथा यूगोस्लाविया के 'गोल्डेन ब्रेथ' पुरस्कारों से सम्मानित हुए।

उनकी प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं *— भग्नदूत, चिन्ता, इत्यलम, हरी घास पर क्षण भर, बावरा अहेरी, इन्द्रधनुष रौंदे हुए, अरी करुणा प्रभामय, आँगन के पार द्वार, सुनहले शैवाल, कितनी नावों में कितनी बार आदि काव्य संग्रह हैं। विपथगा, शरणार्थी, कोठरी की बात आदि उनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं। शेखर एक जीवनी, नदी के द्वीप, अपने-अपने अजनबी उनके उपन्यास हैं। अरे यायावर रहेगा याद, एक बूँद सहसा उछली उनके यात्रा साहित्य हैं। आत्मनेपद, संवत्सर, हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य, लिखि कागज कोरे, केन्द्र और परिधि उनके निबंध संग्रह हैं। भवन्ती, अंतरा, शास्वती, स्मृतिलेख, स्मृति के गलियारों से उनकी डायरी शैली की रचनाएँ हैं।*

प्रयोगवाद और नयी कविता के इस विशिष्ट कवि का देहान्त 4 अप्रैल 1987 ई० को हुआ।

मुझे बचपन से नक्शे देखने का शौक था। आप समझे कि कुछ भूगोल की तरफ प्रवृत्ति होगी-नहीं, सो बात नहीं, असल बात यह है कि नक्शों के सहारे दूर दुनिया की सैर का मजा लिया जा सकता है। यों तो वास्तविक जीवन में भी काफी घूमा-भटका हूँ, पर उससे कभी तृप्ति नहीं हुई, हमेशा मन में यही रहा कि कहीं और चलें, कोई और नई जगह देखें, और इस लालसा ने अभी भी पीछा नहीं छोड़ा है। नक्शों से यह फायदा होता है कि मन के घोड़े पर सवार होकर कहीं चले जाइए, कोई रोक नहीं, अड़चन नहीं, और जब चाहें लौट आइए, या न भी लौटिए — कोई पूछनेवाला नहीं कि हजरत कहाँ रम रहे।

यों तो नक्शों में तरह-तरह के रंगों से कुछ मदद मिलती है यह तय करने में कि कहाँ जाएँ-जिसे हरी-भरी जगह देखनी हो वह नक्शों की हरी-भरी जगहों में घूमे, जिसे पहाड़ी प्रदेश देखने हो वह भूरे या पीले प्रदेशों में जाए, और जिसे एकदम अछूते, अपरिचित प्रदेश में जाने का जोखिम पसंन्द हो वह बिल्कुल सफेद हिस्सों की ओर चल निकले-अनादिकालीन बर्फीले मरु-प्रदेशों में, जंगलों में, समुद्र में, समुद्र-द्वीपों में। नक्शों में कहीं लिखा रहता है कि इस प्रदेश का सर्वेक्षण नहीं हुआ है। हिमालय के अनेक भाग ऐसे हैं, या कि 'अगम्य जंगल' — असमिया सीमा-प्रदेश में ऐसे स्थल हैं, जरा कल्पना कीजिए ऐसी जगहों में जा निकलने का आनंद!

लेकिन इससे अधिक सहायता मिलती है जगहों के नामों से। बचपन में एक नाम पढ़ा था 'अमरकंटक'। यह नाम ही इतना पसंद आया कि मैं चुपके से एक कंबल और दो-चार कपड़ों का बंडल बना लिया कि अभी चल दूँगा वहाँ के लिए। वहाँ जाना नहीं हुआ, अभी तक भी अमरकंटक नहीं देखा है और इस प्रकार उसका काँटा अभी तक सालता ही है, पर नक्शे की यात्रा तो कई बार की है, और अमरकंटक के बारे में उतना सब जानता हूँ जो वहाँ जाकर जान पाता। ऐसा ही एक और नाम था तरंगबाड़ी-यों नक्शे में उसका रूप विकृत होकर त्रांकुबार हो गया है। 'तरंगों वाली बस्ती' — सागर के किनारे के गाँव का यह नाम सुनकर क्या आपके मन में तरंग नहीं उठती कि जाकर देखें? कई नाम ऐसे भी होते हैं जिनका अर्थ समझ में नहीं आता, पर ध्वनि ही मोह लेती है। जैसे 'तिरुकुरंगुड़ि' — नाम सुनकर लगता है, मानो हिरनों का समूह चौकड़ी भरता जा रहा हो। कुछ नाम ऐसे भी होते हैं कि अर्थ जानने पर ही उनका जादू चलता है, जैसे 'लू-हित'। ऊपरी ब्रह्मपुत्र के इस नाम को संस्कृत करके 'लोहित्य' बना लिया गया है जिससे अनुमान होता है कि वह लाल या ताम्र वर्ण की होगी, पर वास्तव में लू-हित का अर्थ है 'तारों की राजकन्या' या ऐसा ही कुछ। ब्रह्मपुत्र का सौन्दर्य जिन्होंने नहीं देखा उनकी तो बात ही क्या, जिन्होंने देखा भी है वे भी क्या इस नाम को जानकर 'तारों की राजकन्या' के तरुण लावण्यमय रूप देखने को ललक न उठेंगे?

''होनहार बिरवान के होत चीकने पात' में कुछ होनहार बिरवान तो नहीं था, पर नक्शों के बगदादी कालीन पर बैठकर हवाई यात्रा करने की इस आदत से यह तो पता लगा ही सकता था कि आगे चलकर भी कहीं टिककर नहीं बैठूँगा। बात भी ऐसी है, लगातार कुछ दिन भी एक जगह रहता हूँ तो कुछ अपनी इच्छा से नहीं, लाचारी से और उस लाचारी में बहुत-से नक्शे जुटाकर फिर अपने लिए कोई हीला निकाल ही लेता हूँ। और आप सच मानिए, जीने की कला सबसे पहले एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने की कला है — कम से कम आधुनिक काल में, जब मानवजाति का इतना बड़ा अंश या तो प्रवासी है, या शरणार्थी: एक स्थान से दूसरे स्थान, एक पेशे से दूसरे में एक घर से दूसरे घर, इत्यादि।

यात्रा करने के कई तरीके हैं। एक तो यह कि आप सोच-विचार कर निश्चय कर लें कि कहाँ जाना है, कब जाना है, कहाँ-कहाँ घूमना है, कितना खर्च होगा, फिर उसी के अनुसार छुट्टी लीजिए, टिकट कटाइए, सीट या बर्थ कराइए, होटल डाक-बंगले को सूचना देकर सुरक्षित कराइए या भावी अतिथियों को खबर कीजिए और तब चल पड़िए। बल्कि तरीका तो यही एक है, क्योंकि वह व्यवस्थित तरीका है। और इसमें मजा बिल्कुल नहीं है यह भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि बहुत से लोग ऐसे यात्रा करते हैं और बड़े उत्साह से भरे वापस आते हैं।

दूसरा तरीका यह है कि आप इरादा तो कीजिए कहीं जाने का, छुट्टी भी लीजिए, इरादा और पूरी योजना भी चाहे घोषित कर दीजिए, पर ऐन मौके पर चल दीजिए कहीं और को। जैसे घोषित कर दीजिए कि आप बड़े

दिनों की छुट्टियों में बंबई जा रहे हैं, लोगों को ईर्ष्या से कहने दीजिए कि अमुक बंबई का सीजन देखने जा रहा है, मगर चुपके से पैक कर लीजिए जबरदस्त गर्म कपड़े और जा निकलिए बर्फ से ढके श्रीनगर में।

लेकिन अपनी भी कुछ बातें कहूँ। मैं दूसरे तरीके का कायल हूँ यह तो आप समझ ही गए होंगे। लेकिन जब निकलता ही हूँ, तब एक तीसरा तरीका भी अख्तियार करता हूँ। जैसे कहा तो सबसे यह कि बंबई जा रहे हैं, मगर जब स्टेशन गए तो यह तय करके कि नैनीताल जा रहे हैं और वहाँ से हिमालय के भीतरी प्रदेशों में, और इस तरह जा निकले... शिलांग।

शिवसागर से आगे सोनारी के पास डि-खू नदी की बाढ़ में कैसे फँस गया था, इसका यही रहस्य है। अंग्रेजी में कहावत है कि 'एक कील की वजह से राज्य खो जाता है।' वह यों कि कील की वजह से नाल, नाल की वजह से घोड़ा, घोड़े के कारण लड़ाई और लड़ाई के कारण राज्य से हाथ धोना पड़ता है। हमारे पास छिनने को राज्य तो था नहीं, पर दाँत माँजने के एक ब्रुश और मोटर की एक मामूली-सी ढिबरी के लिए हम कैसी मुसीबत में पड़े यह हमीं जानते हैं।

सोनारी एक छोटा-सा गाँव है — अहोम राजाओं की पुरानी राजधानी, शिवसागर से कोई अठारह मील दूर। वहाँ भी नाम के आकर्षण से चला गया था। यों असम में 'सोना' — या 'स्वर्ण' बहुत-से नामों में है — सुबनश्री, सोना-भारती वगैरह-और असम भी 'सोनार असम' सोने का असम कहलाता है। बरसात के दिन थे, रास्ता खराब, एक दिन सबेरे घूमने निकला तो देखा कि नदी बढ़कर सड़क के बराबर आ गई है। मैं शिवसागर से तीन-चार मील पर था, सोचा कि एक नया दाँत-ब्रुश ले लूँ, क्योंकि पुराना घिस चला था, और मोटर की भी एक ढिबरी ठीक करवाकर ही लौटूँ... उसकी चूड़ी घिस जाने से थोड़ा-थोड़ा तेल चूता रहता था, वैसे बहुत जरूरी काम नहीं था। खैर, इसमें कोई दो घंटे लग गए, खाना खाने में एक घंटा और तीन घंटे बाद वापस लौटने लगे तो देखा, सड़क पर पानी फैल गया है। पानी गहरा नहीं होगा, यह सोचकर मैं मोटर बढ़ाता चला गया। आगे देखा, सब ओर पानी ही पानी है, सड़क का कहीं पता नहीं लगता, सिर्फ पेड़ों की कतार से अंदाजा लग सकता था। पर पानी बड़े जोर से एक तरफ से दूसरी तरफ बह रहा था, क्योंकि सड़क के एक तरफ नदी थी, दूसरी तरफ नीची सतह के धान के खेत, जिनकी ओर बढ़ रहा था। पानी के धक्के से सड़क कई जगह टूट गई थी। मैं फिर भी बढ़ता गया, क्योंकि आखिर पीछे भी पानी ही था। पर थोड़ी देर बाद पानी कुछ गहरा हो गया और उसके धक्के से मोटर भी सड़क पर से हटकर किनारे की ओर जाने लगी। आगे कहीं कुछ दीखता नहीं था, क्योंकि सड़क की सतह शायद दो-तीन मील आगे तक बहुत नीची थी। सड़क के दोनों ओर जो पेड़ थे उनमें कइयों पर साँप लटक रहे थे, क्योंकि बाढ़ से बचने के लिए वे पहले सड़क पर आते थे और फिर पेड़ों पर चढ़ जाते थे।

मैंने लौटने का ही निश्चय किया। पर सड़क दीखती तो थी नहीं, अंदाज से ही मैं बीच के पक्के हिस्से पर गाड़ी चला रहा था। मोड़ने के लिए उसे उतारना पड़ेगा... और इधर-उधर सड़क है भी कि नहीं, इसका क्या भरोसा? मैं और एक जगह देख भी चुका था कि आँखों के सामने ही कैसे समूचा ट्रक दलदल में धँसकर गायब हो जाता है। इसलिए मोटर को बिना घुमाए उल्टे गियर में ही कोई ढाई मील तक लाया, यहाँ सड़क कुछ ऊँची थी, उसपर गाड़ी घुमाकर शिवसागर पहुँचा। शिवसागर से सोनारी को एक दूसरी सड़क भी जाती थी चाय-बागानों में से होकर, यह सड़क अच्छी थी, पर इसके बीच में एक नदी पड़ती थी जिसे

नाव से पार करना होता था। मैंने सोचा कि इसी रास्ते चलें, क्योंकि सामान तो सब सोनारी में था, मैं डाक-बंगले से कुछ घंटो के लिए ही तो निकला था। शिवसागर में एक तो मोटर की ढिबरी कसवानी थी, और दूसरे दाँत-ब्रुश और कुछ तेल-साबुन लेना था, बस। वह भी लौटने की जल्दी के कारण नहीं लिया था।

इस सड़क से नदी तक पहुँच गए — वह भी बड़ी मुश्किल से, क्योंकि रास्ते में बड़ी फिसलन थी और गाड़ी बार-बार अटक जाती थी। नदी में नाव पर गाड़ी लाद भी ली, और पार भी चले गए। यहाँ भी नदी में बड़ी बाढ़ आई थी और बहते हुए टूटे छप्पर बता रहे थे कि नदी किसी गाँव को लीलती हुई आई है, एक भैंस भी बहती हुई आई और पेड़-पौधों की तो गिनती क्या। उस पार नदी का कगारा ऊँचा था, मोटर के लिए उतारा बना हुआ था, लेकिन नाव से किनारे जो तख्ते डाले गए थे, वे ठीक नहीं लग रहे थे। मोटर जब तख्तों पर आई और नाव एक तरफ को झुकी तो तख्ते फिसल गए, नाव दूर हट गई, मोटर नीचे गिरी, आधी पानी में, आँधी किनारे पर। मैं जोर से ब्रेक दबाए बैठा था, पर ऐसे अधिक देर तक तो नहीं चल सकता था। लेकिन मैं तो मोटर के साथ खुद बँधा बैठा था, उतरकर समझा नहीं सकता था। खैर आध घंटा उस स्वर्ग नसैनी पर बैठे-बैठे असमिया, हिंदी और बंगला की खिचड़ी में लोगों को बताता रहा कि क्या करें, तब मोटर ऊपर चढ़ाई जा सकी। थोड़ा आगे ही ऊँची जगह गाँव था। वहाँ मोटर रोककर चाय की तलाश की। यहीं सोनारी से आए दो साइकिल-सवारों से मालूम हुआ कि वे कंधे तक पानी में से निकलकर आए हैं साइकिलें कंधों पर उठाकर। और मोटर तो कदापि नहीं जा सकती।

इस तरह इधर भी निराशा थी। पानी अभी बढ़ रहा था। यह गाँव ऊँची जगह था, पर यहाँ कैद हो जाना मैं नहीं चाहता था, इसलिए फिर नाव पर मोटर चढ़ाकर उसी रास्ते नदी पार की। सबने मना किया पर मेरे सिर पर भूत सवार था, और हठधर्मी का अपना अनूठा रस होता है!

रात शिवसागर पहुँचे। एक सज्जन ने ठहरने को जगह दी, भोजन-बिस्तर का प्रबंध भी हो गया, पर दाँत का ब्रुश तो उधार नहीं लिया जा सकता। सबेरे-सबेरे चलकर एक सौ अट्ठाइस किलोमीटर दूर डिब्रूगढ़ पहुँचे, वहाँ ब्रुश लेकर मुँह-हाथ धोकर सुस्थ हुए, यहाँ एक कमीज और पैण्ट खरीदकर कपड़े बदले, रात के लिए एक कंबल खरीदा। मन-ही-मन अपने को कोसा कि न नया दाँत-ब्रुश लेने के लिए सोनारी से निकले होते, न यह मुसीबत होती, क्योंकि इसकी ऐसी तात्कालिक आवश्यकता तो थी नहीं, न मोटर की ढिबरी का मामला ही इतना जरूरी था। लेकिन उपाय क्या था?

इस तरह बारह दिन और काटने पड़े, क्योंकि सोनारी के सब रास्ते बंद थे। लौटकर देखा, सोनारी के डाकबंगले में पानी भर गया था, कपड़े सब सीलकर सड़ रहे हैं, किताबें तो गल ही गई थीं। बचा था तो केवल स्नानघर में ऊँचे ताक पर रखा हुआ साबुन का डिब्बा, और दाँत का ब्रुश।

नक्शे मैं अब भी देखता हूँ। वास्तव में जितनी यात्राएँ स्थूल पैरों से करता हूँ, उससे ज्यादा कल्पना के चरणों से करता हूँ। लोग कहते हैं कि मैंने अपने जीवन का कुछ नहीं बनाया, मगर मैं बहुत प्रसन्न हूँ, और किसी से ईर्ष्या नहीं करता। आप भी अगर इतने ही खुश हों तो ठीक-तो शायद आप पहले से मेरा नुस्खा जानते हैं — नहीं तो मेरी आपकी सलाह है, ''जनाब, अपना बोरिया-बिस्तर समेटिए और जरा चलते-फिरते नजर आइए।'' यह आपका अपमान नहीं है, एक जीवन-दर्शन का निचोड़ है। 'रमता राम' इसलिए कहते हैं कि जो रमता नहीं, वह राम नहीं, टिकना तो मौत है।

एकांकी

आजादी की नींद

भुवनेश्वर प्रसाद

लेखक परिचय :

भुवनेश्वर प्रसाद जी अद्‌भुत प्रतिभा के धनी जीनियस रचनाकार थे। उनका जन्म 1910 ई० में शाहजहाँपुर में हुआ। भुवनेश्वर जी को जीवन में आर्थिक कष्टों का निरंतर सामना करना पड़ा। जीवन में आने वाली चुनौतियों से संघर्ष करते हुए वह निरंतर साहित्य सृजन में लगे रहे। वह बर्नार्ड शा, डॉ० एच० लारेंस, सिंगमंड फ्रायड और विश्व महायुद्ध से बहुत प्रभावित हुए, जिसका गहरा प्रभाव इनकी रचनाओं में दिखाई पड़ता है। उनका जीवन, बेरोजगारी और साहित्य सृजन की दोहरी कठिनाइयों में बीता।

उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं *— श्यामा—एक वैवाहिक विडंबना, प्रतिभा का विवाह, शैतान, एक साम्यहीन साम्यवादी, रोमांस-रोमांच, स्ट्राइक, ऊसर, तांबे के कीड़े, सिकन्दर-अम्बी, कारवां, संग्रह में संग्रहित हैं। शुकदेव सिंह द्वारा सम्पादित भुवनेश्वर की रचनाओं में 'आजादी की नींद', 'रोशनी और आग' तथा अन्य रचनाएँ संग्रहित हैं। इनकी 'भेड़िए' कहानी की विशेष चर्चा हुई। 'आदमखोर', 'गोगोल के नाटक', इन्सपेक्टर जनरल का एकांकीकरण', कठपुतलियाँ इनकी प्रतीकवादी शैली की नाट्य कृतियाँ हैं। 'सींकों की गाड़ी' इनकी अंतिम रचना है। इनकी मृत्यु 1957 ई० में हुई।*

पात्र

एक पेशेवर नेता

ईमानदार बातून

एक विशेषज्ञ

एक कमसखुन

एक कवि

एक नौकर

मिसेज ई० बातून

मिस कटारा

बूढ़ी दाई

(ईमानदार बातून के मकान का बाहरी कमरा : कमरा साधारण है और शायद कभी-कभी बीते हुए जमाने में सजाया भी गया था।

लेकिन अब उसमें तरतीबवार और सलीके का विकृत और विद्रोही रूप नजर आता है। वैसे फरनीचर काफी हैं और कुर्सियाँ एकलीक तीनों तरफ की दीवारों से सटाकर रख दी गयी हैं। परदा उठने पर ईमानदार बातून जिसकी उम्र और तजुरबा ज्यादा नहीं है, लेकिन जिसे शायद ज्यादा बातूनीपन या जरूरत से ज्यादा ईमानदारी ने जगआलूदा बना दिया है, कुछ बेवजह और बेइरादा ढंग से कमरे की चीजें इधर-उधर कर रहा है। वह अचानक कोने की एक अलमारी की तरफ लपकता है, जैसे उसने कोई बड़ी बेकार और सारहीन चीज देख ली हो। अलमारी के पास पहुँचकर वह उस घर से कुछ किताबें उठाकर भीतर के दरवाजे में कुछ नाटकीय गुस्से से फेंक देता है।)

ई० बातून : मैं पागल हो जाऊँगा, मैं जहर खा लूँगा, मैं दाँतों से अपना हाथ काट लूँगा अगर मैंने इस कमरे में फिर कोई किताब देख ली... मैं कितनी बार और कितने तरीके से कह चुका हूँ।

(भीतर से मिसेज बातून घबरायी हुई आती हैं और हकबकी-सी कमरे में दाखिल होती हैं। मिसेज बातून की छवि कभी जरूर सुघड़ रही होगी, लेकिन यह सुघड़ता समय के हचकोलों से बचकर भी पति की ईमानदारी की स्वाभाविक नाहमवारी की शिकार हो गयी।)

मि० बातून : यहाँ अभी कोई चीज गिरी है। और... और... (फिर हकबकी रह जाती हैं।)

ई० बातून : जी हाँ यहाँ अभी जरा आसमान गिर गया है।

मि० बातून : ऐं! आप यह किस-किस पर जोर-जोर से बिगड़ रहे थे?

ई० बातून : हूँ-मैं तुमसे एक बात पूछता हूँ। तुम क्या कभी ईमानदार न हो पाओगी—और सितम तो यह है कि किसी दूसरे से नहीं, तुम खुद अपने से ईमानदार नहीं हो...अगर होती ... अगर होती तो—

मि० बातून : तो कभी जहर खा लेती ... ?

ई० बातून : (सहसा उसके चेहरे पर गुस्सा आ जाता है।) तुमने शायद यह बात बिल्कुल बेइरादा कही है और चंद रटे हुए अलफाज से ज्यादा यह कुछ नहीं है, लेकिन यह ईमानदारी की बात है, शोपेनहार के बाद इतनी ईमानदारी की बात सिर्फ तुमने कही है। ईमानदारी पैदा करने की सबसे अच्छी क्या, अकेली तरकीब यही है कि हम मौत नहीं अपने अंदर मौत का एक ईमानदार लालच पैदा करें। यही और सिर्फ यही जिंदगी की भारहीन गुरुता, एक एब्स्ट्रैक्ट मास पैदा करता हैं।

मिसेज बातून इस लम्बी स्पीच के बीच में ही अन्दर चली जाती हैं। भीतर से दाई की बूढ़ी और पकी हुई आवाज आती है।

दाई : अरे! ये किताबें किसने नाली में फेंक दी -च् : च् : कैसी नीली-नीली दफ्तियों की किताबें यहाँ कीचड़ में डाल दीं! (हाथ में एक पानी टपकाती हुई किताब लिये दाखिल होती है।) लल्लन बाबू, देखो, ये तुम्हारी किताबें हैं?

ई० बातून : आह! ईमानदारी–इस दुनिया में तुम्हारा यह भोंडा चीरहरण कब खत्म होगा! तुम सोचती हो दाई कि मैं अब भी दो बरस का गुलाबी हाथों–पैरोंवाला बच्चा हूँ और मुझे उसी निकम्मे गुलगुले जैसे नाम से पुकारा करो—

दाई : (खुश होकर) रुई के गालों में रखकर तो मैंने पाला है। ले भला कहो...

ई० बातून : रुई के गालों में जैसे नन्हें खरगोस का बच्चा विबिसेक्शन के लिए पाला जाता है।

दाई : चुप रहो तुम! बात बहुत करते हो और काम–धन्धा तो तुम्हारे पास है नहीं अब, लो और किताबें फेंक दीं... (पकी हुई समझदार कड़ाई से) कुछ काम–धन्धा करो–अब यह किताबें गारत हो गई न? भला यह कोई बात है! तुमने क्यों फेंकी?

ई० बातून : फेंक दी, क्योंकि दुनिया की सब किताबें बेईमानी के तमगे हैं। झूठ का जुलूस हैं। अंधेरे के मील के पत्थर हैं। तुम क्या समझोगे, लेकिन जैसे अधमुए आदमी के मुँह में भी गंगाजल टपकाया जाता है, तुम्हें भी ईमानदारी की बात सुनानी पड़ेगी।

दाई : और मैंने मर–खपकर तुम्हें बित्ते–भर से इतना बड़ा किया।

ई० बातून : (हिकारत की हँसी हँसकर) और अब अगर तुममें दुर्वासा की तरह शाप देने की ताकत होती तो तुम मुझे फिर वित्तेभर का बामन बना लेती—लेकिन तुम यह कहोगी थोड़े ही, खुद सोचोगी भी नहीं। इसकी अदना–सी वजह है कि तुम ईमानदार नहीं हो।

(बायें विंग के दरवाजे से पेशेवर नेता दाखिल होता है। चूँकि वह पेशेवर है, उसके चेहरे मोहरे में एक कमीना इत्मीनान है, लेकिन वह नेता है, इसलिए डरा हुआ और अनिश्चित है और इसीलिए किसी तरह की वर्दी में है, उसके आते ही दाई चली जाती है।)

पे० नेता : (आते ही) आज हुजूर का मिजाज शाम से ही गर्म है। तभी तो मैं कहता हूँ कि हर संकट, हर क्राइसिस का असर आदमी पर एक अनजाने तरीके से पड़ता है, गैर जाने तरीके से। जैसे चाँद से समुद्र में ज्वार उठता है.....

ई० बातून : (क्वेस्चन) पेशेवर नेताजी, क्या मैं यह याद दिला सकता हूँ कि मैं यानि बजात खुद पब्लिक मीटिंग नहीं हूँ?

पे० नेता : ज्वार हो या भाटा, लेकिन समुद्र तो समुद्र ही रहता है, लेकिन यदि चाँद! दि क्राइसिस! उसने तुम्हें क्या, इन खाली कुर्सियों को भी पब्लिक मीटिंग बना दिया है।

ई० बातून : आह! आह! तुम शायद मेरी बुनियादी ईमानदारी की सजा हो। तुमने अपनी स्पीच शुरू कर दी...

(दाहिनी तरफ विशेषज्ञ दाखिल होता है, वह जवान और भौंचक्का है और सिवा उसके, जिसका वह विशेषज्ञ है, तमाम चीजों से डरता है और उन्हें तोड़ना चाहता है। वह कीमती कपड़े बड़ी ही बेपरवाही से पहने और आँखों पर रंगीन चश्मा चढ़ाये है।)

विशेषज्ञ : आखाह! यह बुनियादी चीजों का जिक्र कौन कर रहा। बुनियादी चीजें विशेषज्ञों की सम्पत्ति हैं। मसलन, दुनिया एक कार्ल मार्क्स से दूसरे कार्ल मार्क्स पर, जिस तरह लंगूर एक डाल से दूसरी और दूसरी से तीसरी पर कूदता है, कूद सकती है, लेकिन जॉन स्टुअर्ट मिल के बुनियादी सिद्धान्तों के खिलाफ नहीं जा सकती। यही तो मैं सोवियत रूस से कहता हूँ कि देखा भाई तुम...

ई० बातून : सोवियत रूस! कब और कहाँ मिल गया तुम्हें?

पे० नेता : बुनियादी बातें ठीक हैं, लेकिन अपूर्ण हैं। वे अपूर्ण हैं, कमजोर हैं—और एक सही और इंसानी मसरफ की मुहताज हैं। क्राईसिस, संकट (खाँसता है।)

(गवैयों की तरह गुनगुनाता कवि बाई तरफ से दाखिल होता है। कवि बेउम्र है। न बूढ़ा है न जवान और न जाने किस चीज में मगन है, ऐसी कोई चीज जिसे वह खुद नहीं जानता।)

कवि : नमस्कार बंधुओं। यहाँ तो अच्छी खासी बहस छिड़ी हुई है। लेकिन मैं आप लोगों से एक बात पूछता हूँ जिसके पीछे सारे वेद हैं, सारा सार है। पूछता हूँ कि उद्‌गम कहाँ है?

पे० नेता : तुम कवि, तुम सकून और विश्राम के कीड़े हो। तुम न गा सकते हो न चिल्ला सकते हो, इसलिए इनके बीच की चीज कविता करते हो। क्राइसिस तुम्हें न छूती है न चिढ़ाती है, वह तुम्हें मिटाने से इनकार कर ही देती है। वह तुम्हें एक हिजड़ा बनाकर अभयदान देती है।

(भीतर से दरवाजे के पास आकर दाई जरा तीखे स्वर से कहती है।)

दाई : यह तुम लोग आपस में बातें करते हो कि गालीगलौज करते हो—यह भी कोई बात है। यहाँ यह सब मत किया करो कि...

पे० नेता : क्या यह तुम्हारी खादिमा है? (दाई की तरफ उँगली उठाकर दिखाते हुए।)

ई० बातून : उसने अपनी जिन्दगी में एक बार भी पब्लिक मीटिंग नहीं देखी है। वह तबला तक तो बजाना जानती नहीं है। उसकी बात पर भरोसा मत करो। तुम कवि को खूब गालियाँ दो...

कवि : लेकिन क्यों गालियाँ दो। मैंने सीधी दो टूक बात पूछी–लेकिन शायद मैंने उद्‌गम की बात उठायी, नेता उससे चिढ़ गया। उसका सारा तर्करथ सरकण्डे की गाड़ी की तरह लौट गया।

विशेषज्ञ : सरकण्डे की नहीं, कूड़े गाड़ी की तरह लौट पड़ा।

पे० नेता : ईश्वर के लिए तुम चुप रहो। ईमानदार बातूनजी, तुम्हारी खादिमा ने मेरा अपमान किया है। (पैर पटककर) तुम लोगों की दावत करके अपने नौकरों से तौहीन कराते हो। लानत है तुम्हारी ईमानदारी पर! (और तेज होकर) ये मेयर सर्वेंट।

विशेषज्ञ : लेकिन वह बुनियादी उसूल जानती है। वह जानती है कि तुम कवि और नेता एक ही पेशे के आदमी हो। एक पेशे के आदमियों का आपस में लड़ना-लथाड़ना रायज और जायज है। उसने तुम्हारी दाद दी। उसका अपना तरीका, है, चलो, आगे बढ़ो...

(इस बीच में कमसखुन अन्दर आ जाता है। वह मोटा भद्दा और असुशील-सा एक अधेड़ है। वह कम बोलता है। यह शायद उसकी वजाकता से ही जाहिर होता है। कमरे में आकर वह दो सेकेण्ड अजनबियों की तरह खड़ा रहता है और फिर अचानक जानकारी से मुस्करा देता है।)

कमसखुन : लेकिन आप लोग सब खड़े क्यों हो? बैठ क्यों नहीं जाते? कुर्सियाँ बैठने के लिए ही बनायी जाती हैं।

(वे सब एकबारगी ऐं करते हैं और दरअसल अचम्भे में पड़ जाते हैं कि वाकई कुर्सियों के होते हुए भी वे अब तक क्यों खड़े रहे। अपनी इस जरा जाहिर अपदार्थता पर कुछ झेंप भी जाते हैं, ईमानदार बातून इसमें सबसे पहले सन्तुलित हो जाता है।)

ई० बातून : खूब कहा। दुनिया की तमाम बुनियादी बातों की नाक मोम कर दी। बुनियादी बात यह है : कुर्सियाँ बैठने के लिए होती हैं यह!

(सब बैठ जाते हैं। भीतर से बूढ़ी दाई फिर दरवाजे के पास जाकर कुछ तबीह के साथ कहती है।)

दाई : अब तो सब लोग आ गये—(झाँककर) अभी वह बिटिया नहीं आयी। लेकिन लल्लन बाबू, तुम्हारा नौकर शाम का गया अभी तरकारी लेकर नहीं लौटा है। अब अगर खाने में देर हो तो धरती न छेद डालना। भला कब तरकारी आयेगी तो कब बनेगी और कब खायी जायेगी?

ई० बातून : तुमने फिर वही किया (उठकर खड़ा हो जाता है।) मैं हमेशा के लिए बैठने से इनकार करता हूँ। मैंने तुमसे गुस्से में, खुशी में, होश में, बेहोशी में, न जाने कितनी मरतबे कहा है कि तुम लल्लन बाबू मत कहो। लेकिन तुम... आह तुम... आह तुम! (दाई हकबकी रह जाती है)

कवि : माताजी, जाइए, आप भीतर बैठिए। यह तो अपना थोड़ा-सा मनोरंजन कर रहे है। खाना खाने की भी जल्दी नहीं है। सुनिए, तब तक मेरा एक छोटा-सा गीत सुनिए।

(सब एकबारगी उठकर उसे रोकना चाहते हैं, लेकिन कवि शुरु कर देता है।)

''हमको हर पशु से न बैर पंछी प्यारा

''मानव ने मानव देख ठहाका मारा।''

ई० बातून : तुम एक मिनट रुक जाओ, एक मिनट, एक मेरी बात सुन लो, सुनो, फिर चाहे हम सबको गीत ही सुनाना, फाँसी पर चढ़ा देना।

(मिस कटारा दाखिल होती हैं। मिस कटारा आधुनिक और स्वदेशी हैं। इन दोनों की लगातार चाशनी ने उन्हें बुद्धिजीवी–अब इसका चाहे जो भी अर्थ हो–बनने पर मजबूर कर दिया है। इस मजबूरी को वह तन रहते हँस–बोलकर झेलेंगी, यह उनके रंगरेशे से टकपता है।)

मि० क० : मुझे ज्यादा देर तो नहीं हुई?

कवि : (गाता जाता है और स्वागत का अभिनय करता है)

"क्यों तारों पर काई जमती, क्यों होता सागर खारा मानव ने मानव देख कटारा मारा–माफ कीजिएगा मिस कटारा–ठहाका मारा।

मि० क० : शीर्षक! शीर्षक! कविता का शीर्षक क्या है आखिर?

ई० बातून : (करीब–करीब रुआंसा–सा) शीर्षक बता दीजिए। बिना शीर्षक बताये कविता पढ़ना हमारी तौहीन है। कतई ईमानदारी की बात नहीं है।

कवि : इस कविता का शीर्षक है 'उद्‌गम'।

पे० नेता : डिस्अलाउड (और झपटकर कवि का मुँह हाथ से बंद कर देता है)

ई० बातून : ईमानदारी की बात है, जब हमने नेताजी की गाली–गलौज नहीं चलने दी तो अब कविता का क्या सवाल है?

पे० नेता : मेरी गाली का मौजूं भी उद्‌गम था। आप हजरत को शायद याद होगा कि मैंने कवि से जो कहा, जिसे आप महानुभावों ने गाली–गलौज कहा, उसकी शुरुआत इसी उद्‌गम से हुई थी।

(कवि का मुँह वैसे ही बंद किये है। बाहर से नौकर घबराया हुआ आता है। वह एक साथ घबराया हुआ और खुश है और इसने उसके बुझे हुए चेहरे को विकृत कर दिया है।)

नौकर : मालिक! मालिक! तनिक द्‌याखौ आय, बाहिर कुछ हुई गवा।

ई० बातून : (दाँव–पेंच का अभिनय करते हुए) अबे शाम का गया हुआ अब लौटा है तो एक राग बनाकर–क्या हुई गवा? बेईमानी के पण्डे। यह जिन्दगी हरगिज नहीं है। यह ईमानदारी की मोमियाई है–सच्चाई की तपेदिक है।

नौकर : आप तो फैलसूफी माँ बतियात हैं? बाहर साँचे कुछ हुई गवा। आज हमार देखत–देखत हुआँ कुछ हुई गवा।

कमसखुन : दम ले लो पट्‌ठे। फिर बतलाना बाहर क्या हुआ।

नौकर : दम तो सांचेन भूल गया। (जोर–जोर से साँस लेता है।)

ई० बातून : (बाल नोचते हुए) अब अगर तू यहाँ से बाहर न गया तो मैं घर छोड़कर चला जाऊँगा। अब तू ही रह ले इस घर में, मैं नहीं रहूँगा।

(बाहर कुछ शोर-सा होता है। कवि कसम खाता है और अपना मुँह छुड़ाने की भरपूर कोशिश करता है।)

नौकर : सुनो ध्यान से। हम कहत हैं कि बाहर कुछ हुई गवा। हम पूछा तो आपै की तरह एक बाबू कहिन तौन न जाने का भवा लेडियो उई जो गावत है, बोलत है न?

कमसखुन : लेडियो यानी रेडियो।

नौकर : वहे-वहे जो गावत है पतुरियन की तरह, सो आजाद हुई गवा।

कवि : (वह एकबारगी अपना मुँह आजाद कर लेता है।) आजाद! मेरी एक कविता है, आजादी। सिर्फ पैंतालिस लाइनें हैं उसमें, लेकिन वह अभी अधूरी है। कुछ सुनिए।

ई० बातून : (फिर लपककर उसका मुँह बन्द कर लेता है।) मैं प्रशा के इतिहास की दुहाई देता हूँ, तुममें से कोई इस पाजी लुच्चे ईमानदारी के कज्जाक को...

(नौकर की तरफ इशारा करता है)। बाहर निकाल दो। तुम जानते नहीं, यह जो तरकारी के पैसे ले गया था, उसकी शराब पी आया है। इसे निकाल दो-इसे फौरन निकाल दो, कब्ल इसके कि इसकी मोहक और घातक बेईमानी बादल बनकर यहाँ बरस न पड़े।

नौकर : (अब उसका लहजा साफ शराबियों का-सा है। हाथ जोड़कर) अब मालिक आजौ झूठ बोलब। पिया जरूर है लेकिन अस नहिन पिया है कि रहीसन की तरह बोंग जाई।

ई० बातून : (कवि के मुँह के साथ कशमकश करते हुए) देखा तुमने, यह हमारे ऊपर थूक रहा है। हमारी बुनियादें हिला रहा है लानत है तुम्हारे ऊपर...

नौकर : मालिक की बात का बुरा न मान्यो ई आपन किताबैं ब्वालत हैं। विदवानी कर्त आंय।

ई० बातून : (अब भी कवि से उलझा है।) इसे मार डालो, इसे अपनी ढालों के नीचे कुचल डालो कमसखुन-लेकिन यह पहले मालूम कर ले कि बाहर क्या हुआ है।

बाहर से लाउडस्पीकर की गुजरती हुई आवाज आती है।

लाउडस्पीकर : आज रात को 'जीरो ऑवर' यानी बारह बजकर एक या एक बजने में उनसठ मिनट पर हमारा देश आजाद हो जायेगा। बोलो गुलामी की जय, परतंत्रता की जय, जिसकी वजह से हमें यह आजादी की घड़ी नसीब हुई। (कमरे में एक भूचाल-सा आ जाता है। कवि एकबारगी अपने आपको झट से छुड़ा लेता है। वह एकबारगी खड़ा होता है और फिर लड़खड़ाता हुआ विशेषज्ञ को पकड़ लेता है और दोनों फर्श पर ढेर हो जाते हैं। ईमानदार बातून भीतर की तरफ भागता है और बूढ़ी दाई से टकरा जाता है। पेशवर नेता कोने की मेज पर एक मुस्कराते हुए स्टेच्यू की तरह अडिग खड़ा हो जाता है। कमसखुन कमरे में

इधर–उधर चक्कर काटता है। नौकर एक अजीब अमानवी आवाज करता हुआ कमरे से बाहर भागता है। मिस कटारा बैग खोलकर उतावली से अपना मेकअप करती हैं, जैसे उन्हें किसी होनहार व्यक्ति का स्वागत करना है।)

कमसखुन : (वही सिर्फ अपनी जगह पर बैठा है।) यह खासी गद्दारी है। मैं पूछता हूँ, इसके क्या माने हैं ? क्या आजादी एक अनहोनी और अनजानी घड़ी के सिवा कुछ भी नहीं है ? यह क्या शोहदेबाजी ? (बाहर से नौकर घबराया हुआ आता है। अब की वह पहले से ज्यादा खुश है और उसका चेहरा और भी विकृत है।)

नौकर : तनिक द्याखो आय के। आप मालिक लोग आय के तनिक द्याख लेओ, द्याख लेओ हम प्यादन के द्याखे का बराई है आजादी जानत अहो हुआँ का हुई गवा ?

ई० बातून : मैं पूछता हूँ क्या कोई भी यहाँ कुछ नहीं कर सकता कि इस पाजी मुद्दई को यहाँ से बाहर निकाल दे, नेता तुम ठीक कहते थे... लेकिन नहीं (सहसा उठकर नौकर की तरफ लपकता है और उसे दबोच लेता है.) मैं कहता हूँ इसे यहाँ बन्द कर दो ताकि यह दूसरी कोई खबर न ला सके।

(नौकर दमबखुद रह जाता है। ई० बातून बड़ी आसानी से दरवाजा बन्द कर लेता है और इत्मीनान की साँस लेता है। इस बीज में तमाम लोग उठकर अपनी कुर्सियों पर बैठ जाते हैं। सिर्फ नेता वैसे ही स्टेच्यू की तरह मेज पर खड़ा है।)

विशेषज्ञ : मुझे गम नहीं सिर्फ एक थकान है। आजादी विशेषज्ञों की चीज है, न जनता की, न देश की। कवियों की बनायी आजादी किस काम की है ?

ई० बातून : मैं, सिर्फ एक बात कहता हूँ कि हमें जल्द ही कोई राय नहीं कायम करनी चाहिए। हमें यह करना चाहिए... यह करना चाहिए... हमें आखिर क्या करना चाहिए...

कमसखुन : फैसला–हम क्यों फैसला करें ? हम कोई फैसला नहीं करना चाहते। आपने मेरी कविता नहीं सुनी तो फैसला करने की आवश्यकता ही नहीं होती. फैसले निस्सार हैं। कोई चीज कभी फैसला ही नहीं होती।

पे० नेता : (मुरब्बियाना लहजे में) अब तुम्हें कोई फैसला करने की जरूरत नहीं है। तुम्हें अब तमाम फैसले करे–कराये हुए मिलेंगे।

विशेषज्ञ : अगर आप समझदार हैं और विशेषज्ञ की राय मानेंगे तो आजादी सिर्फ एक खबर है। सड़कों की भीड़ में घिसटती हुई एक खबर, इससे ज्यादा कुछ नहीं।

(बाहर से नौकर फिर दौड़ता हुआ आता है। अब वह पहले से ज्यादा बदहवास और मगन है।)

नौकर : हम कहित हैं कि तुम हियाँ का कुल्हिया मा गुड़ पवाड़त हौ। बाहर निकर के द्याखो हुआँ मार आजादी मची आय।

विशेषज्ञ : अयं, इस बन्दर को तो अपने भीतर बन्द कर दिया था। यह बाहर कैसे भाग गया ?

नौकर : (हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाते हुए) खता माफ होय हजूर। हम पीछे केर दीवार जो नीची आय फलाँग गयन। लेकिन तुमका जवानी की कसम।

(ईमानदार बातून फिर लपककर उसे दबोच लेता है और उसे लिये हुए अन्दर चला जाता है।)

कसमखुन : हम क्यों न चुपचुपाते हुए यह मान लें कि हम आजाद हो गये!

कवि : नहीं, हरगिज और कदापि नहीं। 'मेरी आजादी' शीर्षक कविता अभी अधूरी है।

ई० बातून : (अन्दर से आता है) मैं उस हत्यारे को भीतर बाँध आया हूँ। मैंने उसे रस्सियों से जकड़ दिया है। मैं देखूँगा अब किस तरह बाहर जाता है। लेकिन हमें कुछ फैसला अभी और जरूर करना होगा।

पे० नेता : (जो अब करीब-करीब एक स्टेच्यू बन गया है।) यह नहीं हो सकता। तुम्हारे सारे फैसले बेसूद होंगे, सिर्फ एक मखौल। यही नहीं, यह देश और समाज के साथ गद्‌दारी होगी। हम कहते हैं कि फैसले तुम्हारी संपत्ति रहे ही नहीं।

विशेषज्ञ : हमें इस शख्स को बिल्कुल भूल जाना चाहिए। यह बुनियादी उसूलों के खिलाफ है। लेटूर्जे ने कहा है।

ई० बातून : आह, तुम मुझे न चैन से मरने दोगे, न आजाद होने। यहाँ न फैसलों का सवाल है, न बुनियादी उसूलों का। सवाल ईमानदारी का है...

कवि : सवाल सार का है तथा उद्‌गम का। तुम्हें यह सब कवि की आँखों से देखना पड़ेगा।

मिस कटारा : सवाल आजादी का है।

(अन्दर से दाई आती है)

दाई : सवाल खाने का है। यह आज हो क्या रहा है लल्लन बाबू! यह नौकर, क्यों बाँधकर डाल दिया है? अब कब खाना बनेगा, कब खाया जायेगा।

ई० बातून : (भोंड़ा अभिनय करते हुए) तुम भीतर बैठो, हमें बड़े-बड़े फैसले करने हैं। हमें जीवन और मरने की सारी असंचित ईमानदारी को इस दम, इसी दम संचित करना है। तुम भीतर बैठो, ईश्वर के लिये।

दाई : और नौकर कहता है कि आजादी हो गयी, आजादी किस तरह होती है? आजादी होगी तो हम क्या करें?

कमसखुन : यह बात है! हम क्या करें (सब जैसे एक गहरे पसोपेश में पड़ जाते हैं। एकबारगी उठकर कमरे के बीचोबीच में आकर खड़े हो जाते हैं जैसे किसी अनजाने व्यापक खतरे ने उन्हें एक दूसरे की पनाह लेने के लिए मजबूर कर दिया है। वह एक-दूसरे की तरफ एक

अजीब बेबसी से देखते हैं। अनाचक बाहर एक घना शोर उठता है जो अंधेरे की तरह बहकर पूरे कमरे पर छा जाता है। वे एक-दूसरे के और करीब आ जाते हैं। शोर जब मर जाता है तो वे फिर बोलने की हिम्मत करते हैं।)

विशेषज्ञ : आजादी! हम विशेषज्ञों को उसका सैकड़ों साल अध्ययन करना पड़ेगा। हम क्या कह सकते हैं और क्या कर सकते हैं!

ई० बातून : हमको अतिशय ईमानदारी चाहिए। इतनी कि वह आजादी और गुलामी का भेद मिटा दे। मैं पूछता हूँ, क्या यह मुमकिन है कि हम इस छन यहाँ, अभी वह ईमानदारी-हम क्या करें?

कवि : नहीं, यह नामुमकिन है। मैं अपनी सारी अधूरी कविताएँ इसी दम कैसे पूरी कर सकता हूँ? हम कुछ भी नहीं कर सकते। हम यह क्यों न मान लें कि हम कुछ नहीं कर सकते और गमहीन हो जायें। गम से अपनी चिर सूनी माँग भर लें और उसे पूरा-पूरा कबूल कर लें।

मिस कटारा : और मैं! और मैं हँसू या रोऊँ या सस्ती कसबियों की तरह अपने बाल बिखराकर चौराहे पर खड़ी हो जाऊँ (रुआंसी-सी) यह जो विष युग-युग से मेरे अंदर जमा हो रहा है, अगर मैं कहूँ कि तुम सब मेरे लाल सूरजमुखी-से ओठों को एक बार चूमकर इस विष को काट लो तो क्या तुम यह करोगे?

पे० नेता : (अपने पैडसट से) मैं तुम्हें आगाह करता हूँ मिस कटारा, तुम फैसले कर रही हो। हम यह नहीं बरदाश्त कर सकते। मैं कहता हूँ कि यह बरदाश्त नहीं किया जायेगा।

मिस कटारा : (विद्रोह स्वर में) मैं यह कुछ नहीं जानती। इस एक पल में मुझे मालूम हुआ कि सदियों से एक घना सीला हुआ अंधेरा मेरे अंदर जमा हो रहा था। वाकई सदियों से। यह क्या उल्लुओं की तरह मुझे घूर रहे हो! (रुआंसी होकर) यह युग-युगांतर का उद्‌गम है। क्या तुम यह नहीं कर सकते कि तुम मेरे ओठों को चूमो और अंधेरा छंटे और... तुम ईमानदार बातून।

ई० बातून : नहीं, हरगिज नहीं।

कमसखुन : हमारी समझ में ही नहीं आता कि तुम क्या कर रही हो। तुम घबड़ा गई हो।

पे० नेता : क्राइसिस! यह सब उस क्राइसिस का असर है। अगर आप लोग इजाजत दें तो मैं एक बार फिर चाँद और ज्वार की बात उठाकर गुलामी और आजादी का आंतरिक भेद और ऐक्य आप लोगों पर वाजे कर दूँ...

मिस कटारा : (रुआंसी होकर) तुम चुप रहो! फिर क्या करें? क्या हम इस मुहूर्त के साथ गद्‌दारी करें? हम क्या करें? यह सब जैसे प्रतिध्वनित करते हैं कि हम क्या करें। इसी बीच में

नौकर दाहिनी तरफ के दरवाजे से आकर खड़ा हो गया है और एक कोरी लोलुपता से मिस कटारा की तरफ देख रहा है।

ई० बातून : हे भगवान, यह सब यहाँ हो रहा है कि वहाँ, यह आज है कि कल। फिर छूट गया।

नौकर : (गिड़गिड़ाते हुए) मालिक, हम रस्सी काट डाला दाँतन से (अबकी वह काफी नशे में है) हुआँ मारे आजादी के, मारे आजादी के...

(ई० बातून फिर उसकी तरफ झपटता है। अबकी वह निडर अपनी जगह खड़ा रहता है। खाली बोतल, जो वह मजबूती से हाथ में थामे है, सामने कर लेता है।)

नौकर : अब ई सब न होई, अब कुछ और होई (ई० बातून ठिठक जाता है)

पे० नेता : (दाँत किटकिटाते हुए) अब का होई ? इसका मुँह बन्द कर दो, सीसा पिलाकर इसकी हडड्रियाँ भारी कर दो, कुछ करो, कुछ तुरन्त करो।

नौकर : (उचककर एक बोतल उसके सिर पर जमाता है। पेशेवर नेता वहीं ढेर हो जाता है।) अब तो कुछ और होई...

मिस कटारा : इसे कोई पकड़ लो। यह बेहद नशे में है। यह कुछ भी कर बैठेगा, यह कुछ कह बैठेगा।

(नौकर उन सबको पकड़कर उनकी कुर्सियों पर बैठा देता है। सब एकबारगी जैसे लुंज हो गये हैं और पत्थरों के स्टेच्युओं की तरह आडियंस की तरफ घूरते हैं।)

नौकर : हुई गवा–अब तुम अपन आजादी से स्वाओं, अब कुछ और होई।

काव्य

सूरदास के पद

सूरदास

कवि परिचय :

सूरदास जी कृष्णभक्ति काव्य धारा के सर्वश्रेष्ठ कवि थे। इनका जन्म सम्वत 1540 (1483ई०) में सीही नामक ग्राम में हुआ। कुछ विद्वान सूरदास का जन्म स्थान रूनकता मानते है। स्वामी वल्लभाचार्य जी सूरदास के गुरु थे। सूरदास वात्सल्य व श्रृंगार के अन्यतम कवि हैं।

इनकी प्रमुख रचनाएँ *— सूर सागर, सूर सारावली, साहित्य लहरी हैं।*

सूरदास ने अपने काव्य में बालकृष्ण के सौन्दर्य, चपल चेष्टाओं और क्रीड़ाओं की मनोरम झाँकी के साथ ही कृष्ण व गोपियों के अनन्य प्रेम का सरस, सजीव व मनोहारी चित्रण किया है। सूरदास जी ने भक्ति व विनय सम्बन्धी पदों की भी रचना की है।

इनकी काव्यभाषा सरस व मधुर ब्रजभाषा है। सूरदास के पद विभिन्न राग-रागिनियों में आबद्ध हैं जिनमें साहित्य व संगीत का मणिकांचन संयोग हुआ है। गेयता, स्वाभाविकता, सरसता व मार्मिकता इनके काव्य का अद्वितीय गुण है। अपने आराध्य श्रीकृष्ण की जीवन लीलाओं का गायन ही सूरदास के जीवन का लक्ष्य था। इनकी मृत्यु सम्वत् 1620 (1563ई०) में हुई।

1. (क) वात्सल्य के पद :

(1) मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायो।
मो सों कहत मोल को लीन्हों, तू जसुमति कब जायो।।

कहा करौं इहि रिस के मारें, खेलन हौं नहिं जात।
पुनि-पुनि कहत कौन है माता, को है तेरो तात।।

गोरे नंद जसोदा गोरी तू कत स्यामल गात।
चुटकी दै-दै ग्वाल नचावत, हँसत सबै मुसकात।।

तू मोहीं को मारन सीखी, दाउहिं कबहुँ न खीझै।
मोहन मुख रिस - की ये बातैं, जसुमति सुनि-सुनि रीझै।।

सुनहु कान, बलभद्र चबाई, जनमत ही को धूत।
सूर स्याम मोंहि गोधन की सौं, हौं माता तू पूत।।

(2) मैया! मैं नहिं माखन खायो।
ख्याल परै ये सखा सबै मिलि मेरैं मुख लपटायो।।

देख तुही छींके पर भाजन ऊंचे धरि लटकायो।
हौं जु कहत नान्हें कर अपने मैं कैसे करि पायो।।

मुख-दधि पोंछि, बुद्धि इक कीन्हीं, दोना पीठि दुरायो।
डारि सांटि मुसुकाइ जसोदा, स्यामहिं कंठ लगायो।।

बाल-बिनोद मोद मन मोह्यो भक्ति प्रताप दिखायो।
सूरदास जसुमति को यह सुख, सिब-बिरंचि नहिं पायो।।

(ख) भ्रमरगीत :

(I) ऊधौ मन नहिं हाथ हमारे।
रथ चढ़ाइ हरि संग गए लै, मथुरा जबहिं सिधारे।।

नातरु कहा जोग हम छाँड़हिं, अति-रूचि कै तुम ल्याए।
हम तौ झँखति स्याम की करनी, मन लै जोग पठाए।।

अजहूँ मन अपनौ हम पावैं, तुम तैं होइ तो होइ।
'सूर' सपथ हमैं कोटि तिहारी, कही करैंगी सोइ।।

(II) मधुबन तुम कत रहत हरे?
बिरह-वियोग स्याम-सुंदर के, ठाढ़े क्यों न जरे।।

मोहन बेनु बजावत तुम-तर, साखा टेकि खरे।
मोहे थावर अरू जड़ जंगम, मुनि-जन ध्यान टरे।।

वह चितवनि तू मन न धरत है फिरि फिरि पुहुप धरे।
सूरदास-प्रभु-बिरह-दवानल, नख-सिख-लौं न जरे।।

रसखान के सवैये

रसखान

कवि परिचय :

रसखान का पूरा नाम सैयद इब्राहीम था। इनका जन्म 1548 ई० में हुआ। ये सम्राट अकबर के समकालीन माने जाते है। गोसाईं विट्ठल दास की इनके ऊपर विशेष कृपा रही। रसखान भावुक और सहदय थे। श्रीकृष्ण के अनन्य प्रेम ने इन्हें कवि बना दिया। श्रीकृष्ण के बाल और युवा तथा संयोग और वियोग दोनों रूपों का मनमोहक चित्रण उनके काव्य में मिलता है। उनकी समस्त रचनाओं में श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य भक्ति, ब्रज के प्रति अनुराग के साथ ही सरसता, मधुरता और मनोरमता विद्यमान है। उनकी रचनाएँ निम्नलिखित हैं — सुजान रसखान, प्रेम वाटिका।

उन्होंने सहज, सरल व बोधगम्य ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। उनकी शैली सरल और परिमार्जित है। उनका काव्य कवित्त एवं सवैया छंदो में रचित है। वस्तुत: उनका समस्त काव्य 'रसों की खान' है, जिसका सर्वप्रमुख गुण माधुर्य है। इनकी मृत्यु 1628 ई० में हुई।

(क) मानुष हौं तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बस मेरो चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन।।

पाहन हौं तो वही गिरि को जो धर्‌यो कर छत्र पुरन्दर कारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं मिलि कालिंदी-कूल कदम्ब की डारन।।

(ख) वा लकुटी अरू कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहुँ सिद्धि नवौ निधि को सुख नन्द की गाइ चराइ बिसारौं।।

रसखानि कबौं इन नैनन सों ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिक ये कलधौत के धाम करील के कुंजन ऊपर वारौं।।

(ग) सेष गनेस महेश दिनेस, सुरेसहु जाहि निरन्तर गावैं।
जाहि अनादि अनन्त अखण्ड, अछेद अभेद सुवेद बतावैं।।

नादर से सुक व्यास रटैं, पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ, छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं।।

घनानंद के पद

घनानंद

कवि परिचय :

घनानंद जी रीतिकाल की रीतिमुक्त काव्य धारा के प्रमुख कवि थे। इनका जन्म 1689 ई० में हुआ। जनश्रुति के अनुसार घनानंद दिल्ली के बादशाह मुहम्मद शाह रंगीला के दरबार में मीर मुंशी थे। उनके काव्य की प्रमुख भावना 'उन्मुक्त प्रेम' है। यह प्रेम लौकिकता से अलौकिकता की ओर मुखरित है। वे प्रधानत: विप्रलम्भ श्रृंगार के कवि है किन्तु श्रृंगार के दोनों-संयोग और वियोग पक्ष उनके काव्य में चित्रित हुए हैं। उनकी सभी रचनाओं में 'सुजान' को सम्बोधित किया गया है जिसे श्रृंगार में नायक के लिए तथा भक्तिभाव में कृष्ण के लिए प्रयुक्त समझना चाहिए।

उनकी प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं *— सुजान सागर, विरह लीला, सुजानहिति, प्रेम सरोवर, प्रीति पावस आदि। उनकी कविता में प्रेम का सहज, सरल एवं स्वच्छंद रूप दिखाई पड़ता है। उनका काव्य ब्रजभाषा में रचित है जिसमें भाव व रस का उत्कर्ष दिखाई पड़ता है। उनका काव्य कवित्त और सवैया छंदों में रचित हैं। विरोधाभास उनकी शैली का विशिष्ट गुण है। घनानंद की मृत्यु 1739 ई० में हुई।*

(क) भोर तें साँझ लौं कानन ओर निहारति बावरी नेकु न हारति।
साँझ तें भोर लौं तारनि ताकिबो तारनि सों इकतार न टारति।।

जो कहूँ भावतो दीठि परे घन आनंद आँसुनि औसर गारति।
मोहन-सोहन जोहन की लगियै रहै आँखिन के उर आरति।।

(ख) अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चलैं तजि आपनपौ झिझकै कपटी जे निसाँक नहीं।।

घन आनंद प्यारे सुजान सुनौ यहां एक ते दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ लला, मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।।

अरी वरूणा की शांत कछार

जयशंकर प्रसाद

कवि परिचय :

छायावाद के प्रवर्तक महाकवि जयशंकर प्रसाद का जन्म काशी के प्रतिष्ठित सुंघनी साहू परिवार में सन् 1889 ई० में हुआ था। उन्होंने फारसी, अंग्रेजी, संस्कृत, बंगला आदि भाषाओं का अध्ययन किया। उन्हें जीवन में अनेक पारिवारिक समस्याओं का सामना करना पड़ा फिर भी उन्होंने अध्ययन जारी रखा। वह बहुमुखी प्रतिभा के धनी रचनाकार थे। उन्होंने कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास, निबंध आदि अनेक विधाओं में सृजन कार्य किया। चित्रकला व मूर्तिकला से भी उन्हें विशेष प्रेम था। वह बौद्ध धर्म से भी विशेष प्रभावित थे।

उनकी प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं— *चित्राधार (ब्रजभाषा में रचित काव्यसंग्रह), कानन-कुसुम, लहर, झरना (छायावादी कविताओं का प्रथम संग्रह), प्रेम पथिक,आँसू और कामायनी उनकी प्रमुख काव्य कृतियाँ हैं। कंकाल, तितली, ईरावती (अपूर्ण) उनके उपन्यास हैं। राज्यश्री, कामना, चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, अजातशत्रु, ध्रुवस्वामिनी आदि उनके नाटक हैं। छाया, प्रतिध्वनि, आकाशदीप, इन्द्रजाल, आँधी उनके कहानी संग्रह हैं। काव्यकला और अन्य निबन्ध उनका निबन्ध संग्रह है।*

प्रसाद जी की भाषा खड़ीबोली की तत्सम शब्दावली से युक्त एवं माधुर्य गुण से ओतप्रोत है जिसकी सबसे बड़ी विशेषता उसकी लाक्षणिकता है। उनकी रचनाओं में कला पक्ष के समान भावपक्ष भी अत्यधिक समृद्ध है। हिन्दी नाट्य साहित्य को प्रसाद जी ने एक नया आयाम दिया। इनकी मृत्यु सन् 1937 ई० में हुई।

(क) अरी वरुणा की शांत कछार।
तपस्वी के विराग की प्यार।।

सतत व्याकुलता के विश्राम, अरे ऋषियों, के कानन कुंज!
जगत् नश्वरता से लघु त्राण, लता, पादप, सुमनों के पुंज!
तुम्हारी कुटिया में चुपचाप, चल रहा था उज्ज्वल व्यापार!
स्वर्ग की वसुधा से शुचिसंधि, गूँजता था जिससे संसार!

अरी वरुणा की शांत कछार!
तपस्वी के विराग की प्यार!

तुम्हारे कुंजों में तल्लीन, दर्शनों के होते थे वाद!
देवताओं के प्रादुर्भाव, स्वर्ग के सपनों के संवाद!
स्निग्ध तरु की छाया में बैठ, परिषदें करती थीं सुविचार
भाग कितना लेगा मस्तिष्क, हृदय का कितना है अधिकार?

अरी वरुणा की शांत कछार!
तपस्वी के विराग की प्यार!

छोड़कर पार्थिव भोग विभूति, प्रेयसी का दुर्लभ वह प्यार!
पिता का वक्ष भरा वात्सल्य, पुत्र का शैशव सुलभ दुलार!
दु:ख का करके सत्य निदान, प्राणियों का करने उद्धार!
सुनाने आरण्यक संवाद, तथागत आया तेरे द्वार!

अरी वरुणा की शांत कछार!
तपस्वी के विराग की प्यार!

मुक्ति जल की वह शीतल बाढ़, जगत् की ज्वाला करती शांत!
तिमिर का हरने को दुख भार, तेज अमिताभ अलौकिक कांत!
देव कर से पीड़ित विक्षुब्ध, प्राणियों से कह उठा पुकार -
तोड़ सकते हो तुम भव-बन्ध, तुम्हें है यह पूरा अधिकार!

अरी वरुणा की शांत कछार!
तपस्वी के विराग की प्यार!

छोड़कर जीवन के अतिवाद, मध्य पथ से लो सुगति सुधार!
दु:ख का समुदय उसका नाश, तुम्हारे कर्मों का व्यापार!
विश्व-मानवता का जय घोष, यहीं पर हुआ जलद-स्वर-मंद्र!
मिला था वह पावन आदेश, आज भी साक्षी हैं रवि चन्द्र!

अरी वरुणा की शांत कछार!
तपस्वी के विराग की प्यार!

तुम्हारा वह अभिनन्दन दिव्य और उस यश का विमल प्रचार।
सकल वसुधा को दे सन्देश, धन्य होता है बारम्बार!
आज कितनी शताब्दियों बाद, उठी ध्वंसों में वह झंकार!
प्रतिध्वनि जिसकी सुने दिगंत, विश्व वाणी के बने विहार!

जो बीत गई सो बात गई

हरिवंशराय 'बच्चन'

कवि परिचय :

हरिवंशराय 'बच्चन' जी का जन्म इलाहाबाद के एक श्रीवास्तव कायस्थ परिवार में सन् 27 नवम्बर 1907 ई० में हुआ। उन्होंने कायस्थ पाठशाला से हाईस्कूल, प्रयाग विश्वविद्यालय से बी.ए. किया। इसके बाद इन्होंने एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण किया। प्रयाग विश्वविद्यालय में वह अंग्रेजी के प्रोफेसर रहे। केन्द्रीय सरकार के विदेश मंत्रालय में भी उन्होंने कुछ वर्षों तक कार्य किया। उन्होंने लन्दन से कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य के विख्यात कवि डब्लू. बी. यीट्स की कविताओं पर शोध कर पीएच. डी. पूरी की। हरिवंश राय 'बच्चन' उत्तर छायावादी युग के प्रमुख कवि हैं। उन्होंने व्यक्तिगत जीवन में व्याप्त निराशा व वेदना से उभरकर मधुरता, आस्था और विश्वास के गीत गाये। 'बच्चन' जी गाँधीवादी विचारधारा से प्रभावित थे। 'बच्चन' जी की कविताओं में मानवीय भावनाओं की मनोवैज्ञानिक अभिवक्ति हुई है। खड़ी बोली में रचित उनकी अनेक कविताएं लोकधुनों पर आधारित है।

***उनकी प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं** — मधुशाला, मधुबाला, मधुकलश, सतरंगिनी, मिलन यामिनी निशा नियंत्रण, आकुल अंतर, खादी के फूल, हालाहल, एकांत संगीत, बुद्ध का नाचघर आदि उनके प्रमुख काव्य हैं। क्या भूलूँ क्या याद करूँ, बसेरे से दूर, नीड़ का निर्माण फिर फिर, दस द्वार से सोपान तक उनकी आत्मकथात्मक रचनाएँ हैं। सरल व माधुर्य गुण से युक्त हिन्दी खड़ीबोली, जिनमें प्रतीकों का सुंदरता से प्रयोग किया गया है तथा गीतात्मक शैली उनके काव्य का प्रधान अंग हैं।*

उनकी कृति 'दो चट्टानें' को 1968 में हिन्दी कविता का साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। इसी वर्ष उन्हें सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार तथा एफ्रो एशियाई सम्मेलन के कमल पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया। बिड़ला फाउन्डेशन ने उनकी आत्मकथा के लिये उन्हें सरस्वती सम्मान दिया था। बच्चन जी को भारत सरकार द्वारा 1963 में साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में पद्म भूषण से सम्मानित किया गया था। 'बच्चन' जी को 1966 ई० में राष्ट्रपति द्वारा राज्यसभा का सदस्य मनोनीत किया गया था। 'बच्चन' जी का निधन सन् 18 जनवरी 2003 ई० को मुंबई में हुआ।

(1)

जो बीत गई सो बात गई!
जीवन में एक सितारा था।
माना, वह बेहद प्यारा था,
वह डूब गया तो डूब गया,
अम्बर के आनन को देखो,

कितने इसके तारे टूटे
कितने इसके प्यारे छूटे
जो छूट गए फिर कहाँ मिले,
पर बोलो टूटे तारों पर

कब अम्बर शोक मनाता है!
जो बीत गई सो बात गई!

(2)

जीवन में वह था एक कुसुम
थे उसपर नित्य निछावर तुम,

वह सूख गया तो सूख गया,
मधुवन की छाती को देखो,

सूखी कितनी इसकी कलियाँ,
मुरझाईं कितनी वल्लरियाँ,
जो मुरझाईं फिर कहाँ खिली,
पर बोलो सूखे फूलों पर,

कब मधुवन शोर मचाता है!
जो बीत गई सो बात गई!

(3)

जीवन में मधु का प्याला था,
तुमने तन-मन दे डाला था,

वह टूट गया तो टूट गया,
मदिरालय का आँगन देखो,

कितने प्याले हिल जाते हैं,
गिर मिट्टी में मिल जाते हैं,
जो गिरते हैं कब उठते हैं,
पर बोलो टूटे प्यालों पर;

कब मदिरालय पछताता है!
जो बीत गई सो बात गई!

(4)

मृदु मिट्टी के हैं बने हुए
मधुघट फूटा ही करते हैं,
लघु जीवन लेकर आए हैं,
प्याले टूटा ही करते हैं

फिर भी मदिरालय के अंदर
मधु के घट हैं, मधु प्याले हैं,

जो मादकता के मारे हैं,
वे मधु लूटा ही करते हैं;

वह कच्चा पीनेवाला है
जिसकी ममता घट-प्यालों पर,

जो सच्चे मधु से जला हुआ
कब रोता है, चिल्लाता है।
जो बीत गई सो बात गई!

अकाल और उसके बाद

नागार्जुन

कवि परिचय :

नागार्जुन जी का वास्तविक नाम बैद्यनाथ मिश्र था। इनका जन्म दरभंगा जिला के तरौनी नामक ग्राम में सन् 30 जून 1911 ई० में हुआ था। नागार्जुन जी जनवादी कवि थे। इनका सम्पूर्ण जीवन यायावरी रहा। ये राहुल सांकृत्यायन और सहजानंद सरस्वती से प्रभावित थे। नागार्जुन जी का व्यक्तित्व विद्रोही था। राजनैतिक व्यवस्था से विद्रोह के कारण इन्हें जेल भी जाना पड़ा। ये 'यात्री' नाम से भी लिखते थे। इन्होंने हिन्दी के अतिरिक्त मैथिली, गुजराती तथा संस्कृत में भी रचनाएं रची हैं।

इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं *— युगधारा, प्यासी पथराई आँखें, पाषाणी, सतरंगे पंखोंवाली, तालाब की मछलियाँ, चना जोर गरम, प्रेत का बयान, खिचड़ी विप्लव देखा हमने आदि प्रमुख काव्य कृतियाँ हैं। रतिनाथ की चाची, बलचनमा, बाबा बटेसरनाथ, वरूण के बेटे, कुंभीपाक आदि उनके प्रमुख उपन्यास हैं।*

बाबा नागार्जुन जी प्रगतिवादी काव्य धारा के कवि थे। वह धरती से जुड़े जनवादी कवि थे। स्थानीय मुद्दों, युगीन राजनीति एवं सामाजिक प्रश्नों के साथ-साथ व्यक्ति मानस के कोमल भावों की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति उनके काव्य में हुई है। बाबा नागार्जुन की रचनाओं में सामाजिक यथार्थ झलकता है।

'पत्रहीन नग्न गाछ' नामक मैथिली रचना के लिए उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रदान किया गया। उनकी मृत्यु सन् 5 नवम्बर 1998 ई० को हुई।

कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया, सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त।
दाने आए घर के अंदर कई दिनों के बाद
धुआं उठा आँगन के ऊपर कई दिनों के बाद
चमक उठी घर भर की आँखें कई दिनों के बाद
कौए ने खुजलाई पाँखें कई दिनों के बाद।

(सतरंगे पंखों वाली)

कक्षा–द्वादश
हिन्दी – 'अ'

पूर्णांक – १००

गद्य	20	अंक
काव्य	20	अंक
हिन्दी साहित्य का इतिहास	15	अंक
पारिभाषिक शब्दावली	5	अंक
रिपोर्ताज अथवा पत्र–लेखन	10	अंक
व्याकरण	10	अंक
परियोजना (Project)	20	अंक
कुल	100	अंक

गद्य

निबंध

कुटज – हजारी प्रसाद द्विवेदी

कलाकार की व्यक्तिगत ईमानदारी – भाग – 1

(एक साहित्यिक की डायरी) – गजानन माधव 'मुक्तिबोध'

कहानी

भाई–बहन–बंग महिला (राजेन्द्र बाला घोष)

नशा – मुंशी प्रेमचंद

मलबे का मालिक – मोहन राकेश

काव्य

कबीर दास :

(क) कबीर की साखी

(1) ज्ञान प्रकाशा गुरू मिला ....

(2) ना गुरू मिल्या ....

(3) जाका गुरू भी अंधला ....

(4) कबिरा संगति साधु की ....

(5) जब मैं था तब हरि नहीं ....

(6) निदंक नियरे ....

(7) हेरत–हेरत हे सखि.........

(8) जल में कुंभ-कुंभ में जल है ....

(9) कांकर पाथर जोड़ के ....

(10) हम देखत जग जात है,

(ख) कबीर के पद

(1) माया महा ठगिनि

(2) झूठे तन को क्या गरबावै

तुलसीदास के पद

(क) जे न मित्र दुख .... सब विधि-घटब
(किष्किंधा काण्ड, रामचरितमानस)

(ख) जल को गए लक्खनु - (कवितावली)

(ग) मन पछितैहैं अवसर बीते - (विनय पत्रिका)

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : संध्या सुंदरी

रामधारी सिंह 'दिनकर' : अवकाशवाली सभ्यता

गिरिजा कुमार माथुर : समय के ढेर पर

दुष्यंत कुमार : हो गई है पीर पर्वत-सी

हिन्दी साहित्य का इतिहास :

(क) खड़ी बोली हिन्दी का विकास : संक्षिप्त परिचय

(ख) भारतेन्दु युगीन साहित्य : (प्रमुख साहित्यकार : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालमुकुन्द गुप्त)

(ग) द्विवेदीयुगीन साहित्य :
(प्रमुख साहित्यकार : महावीर प्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त)

(घ) छायावाद : (प्रमुख साहित्यकार : सुमित्रानंदन पंत, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', महादेवी वर्मा)

(ङ) प्रगतिवादी साहित्य :
(प्रमुख कवि : नागार्जुन, रामधारी सिंह 'दिनकर')

(च) प्रयोगवाद :
(प्रमुख कवि : सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', गजानन माधव 'मुक्तिबोध')

पारिभाषिक शब्दावली (50 शब्द)

रिपोर्ताज अथवा पत्र-लेखन

व्याकरण :

पाठ्य-पुस्तक पर आधारित -

(कारक चिह्न, संधि, समास, उपसर्ग, प्रत्यय, वाक्य-संशोधन, वाक्य-परिवर्तन, मुहावरा)

परियोजना : (कोई एक)

प्रिंट माध्यम : समाचार, संपादकीय, फीचर

(अपने निकट के जीवन संदर्भों से जुड़कर इन विधाओं में लेखन करना) अथवा,

इंटरनेट : इंटरनेट का परिचय और वेब की दुनिया में हिन्दी की जानकारी/पुस्तकालय और समाचार पत्र द्वारा प्राप्त ज्ञान।

निबंध

कुटज

हजारी प्रसाद द्विवेदी

लेखक परिचय :

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का जन्म आरत दूबे का छपरा, ओझवलिया, बलिया (उ.प्र.) में सन् 1907 ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम अनमोल दूबे था। पिता की प्रेरणा से इन्होंने संस्कृत और ज्योतिष का अध्ययन किया। इन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से साहित्याचार्य और ज्योतिषाचार्य की परीक्षायें उत्तीर्ण कीं। द्विवेदी जी शान्तिनिकेतन में हिन्दी के विभाग के अध्यक्ष के रूप में कार्यरत रहे। बाद में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय एवं पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ में हिन्दी के विभागाध्यक्ष के रूप में कार्यरत रहे। इसके बाद वह फिर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के रेक्टर बने। द्विवेदी जी जीवन पर्यंत साहित्य साधना में लगे रहे। हिन्दी आलोचना में आ. रामचन्द्र शुक्ल के समकक्ष इनका योगदान एवं महत्त्व है। द्विवेदी जी भारतीय साहित्य, दर्शन एवं संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे। वह गंभीर चिंतक, विचारक, उच्चकोटि के समीक्षक एवं कुशल वक्ता थे। हिन्दी के श्रेष्ठ मौलिक निबंधकारों में उनका नाम उल्लेखनीय है।

उनकी प्रमुख कृतियाँ निम्नलिखित हैं— *विचार और वितर्क, विचार-प्रवाह, अशोक के फूल, कुटज, कल्पलता, आलोक-पर्व, साहित्य के साथी उनके प्रमुख निबंध संग्रह हैं। सूर-साहित्य, कबीर, हमारी साहित्यिक समस्यायें, साहित्य का मर्म आदि उनकी आलोचनात्मक रचनाएँ हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास में भी द्विवेदी जी ने नई दृष्टि से शोध किए हैं। हिन्दी साहित्य की भूमिका, हिन्दी साहित्य : उद्‌भव और विकास, हिन्दी साहित्य का आदिकाल उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। बाणभट्ट की आत्मकथा, अनामदास का पोथा, चारू चन्द्रलेख, पुनर्नवा उनके उपन्यास हैं। प्राचीन भारत का कला विकास, प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद उनकी भारतीय संस्कृति और इतिहास के संबंधित रचनाएँ हैं। उन्होंने अनेक रचनाओं का अनुवाद भी किया है।*

लखनऊ विश्वविद्यालय से उन्हें डि.लिट् की उपाधि प्राप्त हुई। 'कबीर' कृति पर उन्हें मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्रदान किया गया है। भारत सरकार ने उन्हें पद्मभूषण सम्मान से सम्मानित किया। 19 मई 1979 ई० को द्विवेदी जी का निधन हो गया।

कहते हैं, पर्वत शोभा-निकेतन होते हैं। फिर हिमालय का तो कहना ही क्या! पूर्व और अपर समुद्र- महोदधि और रत्नाकर- दोनों को दोनों भुजाओं से थामता हुआ हिमालय पृथ्वी का मानदण्ड' कहा जाए तो गलत क्या है? कालिदास ने ऐसा ही कहा था। इसी के पाद-देश में यह श्रृंखला दूर तक लोटी हुई है, लोग

इसे 'शिवालिक' कहते हैं। 'शिवालिक' का क्या अर्थ है? 'शिवालिक' शिव के जटाजूट का निचला हिस्सा तो नहीं है। लगता तो ऐसे ही है। 'सपादलक्ष' या सवा लाख की मालगुजारी वाला इलाका तो वह लगता नहीं! शिव की लटियायी जटा ही इतनी सूखी, नीरस और कठोर हो सकती। वैसे, अलकनन्दा का स्त्रोत यहाँ से काफी दूरी पर है, लेकिन शिव का अलक तो दूर-दूर तक छितराया ही रहता होगा। सम्पूर्ण हिमालय को देखकर ही किसी के मन में समाधिस्थ महादेव की मूर्ति स्पष्ट हुई होगी। उसी समाधिस्थ महादेव के अलक-जाल के निचले हिस्से का प्रतिनिधित्व यह गिरि-श्रृंखला कर रही होगी। कहीं-कहीं अज्ञात-नाम-गोत्र, झाड़-झंखाड़ और बेहया से पेड़ खड़े अवश्य दिख जाते हैं, पर और कोई हरियाली नहीं। दूब तक सूख गयी है। काली-काली चट्टानें और बीच में शुष्कता की अन्तर्निरूद्ध सत्ता का इजहार करने वाली रक्ताभ रेती है! रस कहाँ! ये जो ठिंगने-से लेकिन शानदार दरख्त गर्मी की भयंकर मार खा-खाकर और भूख-प्यास की निरन्तर चोट सह-सहकर भी जी रहे हैं, इन्हें क्या कहूँ? सिर्फ जी ही नहीं रहे हैं, हँस भी रहे हैं। बेहया हैं क्या? या मस्तमौला हैं? कभी-कभी जो लोग ऊपर से बेहया दिखते हैं, उनकी जड़ें काफी गहरी पैठी रहती हैं। ये भी पाषाण की छाती फाड़कर न जाने किस गह्वर से अपना भोग्य खींच लाते हैं।

शिवालिक की सूखी नीरस पहाड़ियों पर मुस्कराते हुए ये वृक्ष द्वन्द्वातीत हैं, अलमस्त हैं। मैं किसी का नाम नहीं जानता, कुल नहीं जानता, शील नहीं जानता, पर लगता है, ये जैसे मुझे अनादि काल से जानते हैं। इन्हीं में छोटा-सा बहुत ही ठिंगना- पेड़ है, पत्ते चौड़े भी हैं, बड़े भी हैं। फूलों से तो ऐसा लदा है कि कुछ पूछिए नहीं। अजीब सी अदा है, मुस्कराता जान पड़ता है, पूछ रहा है कि क्या तुम मुझे नहीं पहचानते? पहचानता तो हूँ; अवश्य पहचानता हूँ। लगता है, बहुत बार देख चुका हूँ, पहचानता हूँ? नाम नहीं याद आता। पर नाम ऐसा है कि जब तक रूप के पहले ही हाजिर न हो जाए, तब तक रूप की पहचान अधूरी रह जाती है। भारतीय पण्डितों का सैकड़ों बार का कचारा-निचोड़ा प्रश्न सामने आ गया - रूप मुख्य है या नाम? नाम बड़ा है या रूप? पद पहले है या पदार्थ? पदार्थ सामने है, पद नहीं सूझ रहा है। मन व्याकुल हो गया; स्मृतियों के पंख फैलाकर सुदूर अतीत के कोनों में झाँकता रहा। सोचता हूँ, इसमें व्याकुल होने की क्या बात है? नाम में क्या रखा है - ह्वाट्स देअर इन ए नेम! नाम की जरूरत ही हो तो सौ दिये जा सकते हैं। सुस्मिता, गिरिकान्ता, वनप्रभा, शुभ्रकिरीटिनी, मदोद्धता, विजितापता, अलकावतंसा बहुत से नाम हैं। या फिर पौरूष-व्यंजक नाम भी दिये जा सकते हैं - अकुतोभय, गिरिगौरव, कूटोल्लास, अपराजित, धरतीधकेल, पहाड़फोड़, पातालभेद। पर मन नहीं मानता। नाम इसलिए बड़ा नहीं है कि वह नाम है। वह इसलिए बड़ा होता है कि उसे सामाजिक स्वीकृति मिली होती है। रूप व्यक्ति-सत्य है, नाम समाज-सत्य। नाम उस पद को कहते हैं, जिस पर समाज की मुहर लगी होती है। आधुनिक शिक्षित लोग जिसे सोशल सैंकशन कहा करते हैं। मेरा मन नाम के लिए व्याकुल है, समाज द्वारा स्वीकृत, इतिहास द्वारा प्रमाणित, समष्टि-मानव की चित्त-गंगा में स्नात!

इस गिरिकूट-बिहारी का नाम क्या है? मन दूर-दूर तक उड़ रहा है - देश में और काल में - मनोरथानामगतिनं विद्यते! अचानक याद आया अरे, यह तो कुटज है! संस्कृत साहित्य का बहुत परिचित, किन्तु कवियों द्वारा अपमानित, यह छोटा-सा शानदार वृक्ष 'कुटज' है। 'कूटज' कहा गया होता तो कदाचित् ज्यादा अच्छा होता। पर नाम इसका चाहे 'कुटज' ही हो, विरुद तो निस्सन्देह 'कूटज' होगा। गिरिकूट पर उत्पन्न होने वाले इस वृक्ष को 'कुटज' कहने में विशेष आनन्द मिलता है। बहरहाल, यह कूटज-कुटज है,

मनोहर कुसुमस्तवकों से झबराया, उल्लास–लोल चारुस्मित कुटज! जी भर आया। कालिदास ने 'आषाढ़स्य प्रथमदिवसे' रामगिरि पर यक्ष को जब मेघ की अभ्यर्थना के लिए नियोजित किया तो कम्बख्त को ताजे कुटज पुष्पों की अंजलि देकर ही सन्तोष करना पड़ा। चम्पक नहीं, वकुल नहीं, नीलोत्पल नहीं, मल्लिका नहीं, अरविन्द नहीं – फकत कुटज के फूल। यह और बात है कि आज आषाढ़ का नहीं, जुलाई का पहला दिन है। मगर फर्क भी कितना है! बार–बार मन विश्वास करने को उतारू हो जाता है कि यक्ष बहाना मात्र है, कालिदास ही कभी 'शापेनास्तंगमितमहिमा! (शाप से जिनकी महिमा अंत हो गई हो) होकर रामगिरि पहुँचे थे, अपने ही हाथों इस कुटज पुष्प का अर्घ्य देकर उन्होंने मेघ की अभ्यर्थना की थी। शिवालिक की इस अनत्युच्च पर्वत–श्रृंखला की भाँति... रामगिरि पर भी उस समय और कोई फूल नहीं मिला होगा। कुटज ने उनके सन्तप्त चित्त को सहारा दिया था – बड़भागी फूल है यह। धन्य हो कुटज, 'तुम गाढ़े के साथी' हो। उत्तर की ओर सिर उठाकर देखता हूँ, सुदूर तक ऊँची काली पर्वत–श्रृंखला छायी हुई है और एकाध सफेद बादल के बच्चे उससे लिपटे खेल रहे हैं। मैं भी इन पुष्पों का अर्घ्य उन्हें चढ़ा दूँ? पर काहे वास्ते? लेकिन बुरा भी क्या है!

कुटज के ये सुन्दर फूल बहुत बुरे तो नहीं है। जो कालिदास के काम आया हो, उसे ज्यादा इज्जत मिलनी चाहिए। मिली कम है। पर इज्जत तो नसीब की बात है। रहीम को मैं बड़े आदर के साथ स्मरण करता हूँ। दरिया दिल आदमी थे, पाया सो लुटाया। लेकिन दुनिया है कि मतलब से मतलब है, रस चूस लेती है, छिलका और गुठली फेंक देती है। सुना है, रस चूस लेने के बाद रहीम को भी फेंक दिया गया था। एक बादशाह ने आदर के साथ बुलाया, दूसरे ने फेंक दिया! हुआ ही करता है। इससे रहीम का मोल घट नहीं जाता। उनकी फक्कड़ाना मस्ती कहीं गई नहीं। अच्छे–भले कद्रदान थे। लेकिन बड़े लोगों पर भी कभी–कभी ऐसी वितृष्णा सवार होती है कि गलती कर बैठते हैं। मन खराब रहा होगा, लोगों की बेरूखी और बेकद्रदानी से मुरझा गए होंगे – ऐसी ही मन:स्थिति में उन्होंने विचारे कुटज को भी एक चपत लगा दी। झुँझलाए थे, कह दिया —

वे रहीम अब बिरछ कहँ, जिनकर छाँह गंभीर।
बागन बिच–बिच देखियत, सेंहुड़ कुटज करीर।।

गोया कुटज अदना–सा 'बिरछ' हो। छाँह ही क्या बड़ी बात है, फूल क्या कुछ भी नहीं? छाया के लिए न सही, फूल के लिए तो कुछ सम्मान होना चाहिए। मगर कभी–कभी कवियों का भी 'मूड' खराब हो जाया करता है। वे भी गलत–बयानी के शिकार हो जाया करते हैं। फिर बागों से गिरिकूट बिहारी कुटज का क्या तुक है?

कुटज अर्थात जो कुट से पैदा हुआ हो। 'कुट' घड़े को भी कहते हैं, घर को भी कहते हैं। कुट अर्थात् घड़े से उत्पन्न होने के कारण प्रतापी अगस्त्य मुनि भी 'कुटज' कहे जाते हैं। घड़े से तो क्या उत्पन्न हुए होंगे। कोई और बात होगी। संस्कृत में 'कुटहारिका' और 'कुटकारिका' दासी को कहते हैं। क्यों कहते हैं? कुटिया या कुटीर शब्द भी कदाचित् इसी शब्द से संबद्ध है। क्या इस शब्द का अर्थ घर ही है। घर में काम–काज करने वाली दासी कुटकारिका और कुटहारिका कही ही जा सकती है। एक जरा गलत

ढंग की दासी 'कुटनी' भी कही जाती है। संस्कृत में उसकी गलतियों को थोड़ा अधिक मुखर बनाने के लिए उसे 'कुट्टनी' कह दिया गया है। अगस्त्य मुनि भी नारदजी की तरह दासी के पुत्र थे क्या? घड़े से पैदा होने का तो कोई तुक नहीं है, न मुनि कुटज के सिलसिले में, न फूल कुटज के। फूल गमले में होते अवश्य हैं, पर कुटज तो जंगल का सैलानी है। उसे घड़े या गमले से क्या लेना-देना। शब्द विचारोत्तेजक अवश्य है। कहाँ से आया? मुझे तो इसी में सन्देह है कि यह आर्य भाषाओं का शब्द है भी या नहीं। एक भाषाशास्त्री किसी संस्कृत शब्द को एक से अधिक रूप में प्रचलित पाते थे तो तुरन्त उसकी कुलीनता पर शक कर बैठते थे। संस्कृत में 'कुटज' रूप भी मिलता है और 'कुटच' भी। मिलने को तो 'कूटज' भी मिल जाता है। तो यह शब्द किस जाति का है? आर्य जाति का तो नहीं जान पड़ता। सिलवाँ लेवी कह गए हैं कि संस्कृत भाषा में फूलों, वृक्षों और खेत-बागबानी के अधिकांश शब्द आग्नेय भाषा-परिवार के हैं। यह भी वहीं का तो नहीं है? एक जमाना था जब आस्ट्रेलिया और एशिया महाद्वीप मिले हुए थे, फिर कोई भंयकर प्राकृतिक विस्फोट हुआ और ये दोनों अलग हो गये। उन्नीसवीं शताब्दी के भाषा-विज्ञान पण्डितों को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि आस्ट्रेलिया के सुदूर जंगलों में बसी जातियों की भाषा एशिया में बसी हुई कुछ जातियों की भाषा से सम्बद्ध है। भारत की अनेक जातियाँ वह भाषा बोलती हैं, जिनमें सन्थाल, मुण्डा आदि भी शामिल हैं। शुरु-शुरु में इस भाषा का नाम आस्ट्रो-एशियाटिक दिया गया था। दक्षिण-पूर्व या अग्निकोण की भाषा होने के कारण इन्हें आग्नेय परिवार भी कहा जाने लगा। अब हम लोग भारतीय जनता के वर्ग-विशेष को ध्यान में रखकर और पुराने साहित्य का स्मरण करके इसे कोल-परिवार की भाषा कहने लगे हैं। पण्डितों ने बताया है कि संस्कृत भाषा के अनेक शब्द, जो अब भारतीय संस्कृत के अविच्छेद्य अंग बन गए हैं, इसी श्रेणी की भाषा के हैं। कमल, कुड्मल, कम्बु, कम्बल, ताम्बुल आदि शब्द ऐसे ही बताए जाते हैं। पेड़-पौधों, खेतों के उपकरणों और औजारों के नाम भी ऐसे ही हैं। 'कुटज' भी हो तो क्या आश्चर्य? संस्कृत भाषा ने शब्दों के संग्रह में कभी छूत नहीं मानी। न जाने किस-किस नस्ल के कितने शब्द उसमें आकर अपने बन गए हैं। पण्डित लोग उसकी छान-बीन करके हैरान होते हैं। संस्कृत सर्वग्रासी भाषा है।

ये जो मेरे सामने कुटज का लहराता पौधा खड़ा है, वह नाम और रूप दोनों में अपनी अपराजेय जीवनी-शक्ति की घोषणा कर रहा है। इसीलिए यह इतना आकर्षक है। नाम है कि हजारों वर्षों से जीता चला आ रहा है। कितने नाम आये और गये। दुनिया उनको भूल गयी, वे दुनिया को भूल गये। मगर कुटज है कि संस्कृत की निरन्तर स्फीयमान शब्दराशि में जो जम के बैठा सो बैठा ही है। और रूप की तो बात ही क्या है। बलिहारी है इस मादक शोभा की। चारों ओर कुपित यमराज के दारुण नि:श्वास के समान धधकती लू में यह हरा भी है और भरा भी है, दुर्जन के चित्त से भी अधिक कठोर पाषाण की कारा में रुद्ध अज्ञात जलस्त्रोत से बरबस रस खींचकर सरस बना हुआ है और मूर्ख के मस्तिष्क से भी अधिक सूने गिरि कान्तार में भी ऐसा मस्त बना है कि ईर्ष्या होती है। कितनी कठिन जीवनी-शक्ति है। प्राण ही प्राण को पुलकित करता है, जीवनी-शक्ति ही जीवनी-शक्ति को प्रेरणा देती है। दूर पर्वतराज हिमालय की हिमाच्छादित चोटियाँ हैं, वहीं कहीं भगवान् महादेव समाधि लगाकर बैठे होंगे, नीचे सपाट पथरीली जमीन का मैदान, कहीं-कहीं पर्वतनन्दिनी सरिताएँ आगे बढ़ने का रास्ता खोज रही होंगी - बीच में यह चट्टानों की ऊबड़-खाबड़ जटाभूमि है - सूखी, नीरस, कठोर। यही आसन मारकर बैठे हैं मेरे चिरपरिचित दोस्त कुटज। एक

बार अपने झबरीले मूर्धा को हिलाकर समाधिनिष्ठ महादेव को पुष्पस्तबक का उपहार चढ़ा देते हैं और एक बार नीचे की ओर अपनी पाताल भेदी जड़ों को दबाकर गिरिनन्दिनी सरिताओं को संकेत से बता देते है कि रस का स्रोत कहाँ है। जीना चाहते हो ? कठोर पाषाण को भेदकर, पाताल की छाती चीरकर अपना भोग्य संग्रह करो; वायुमण्डल को चूसकर, झंझा-तूफान को रगड़कर, अपना प्राप्य वसूल लो; आकाश को चूसकर, अवकाश की लहरों में झूमकर, उल्लास खींच लो। कुटज का यही उपदेश है —

भित्त्वा पाषाणपिठरं छित्त्वा प्राभञ्जनी व्यथाम्।
पीत्वा पातालपानीयं कुटजश्चुम्बते नभः।

दुरन्त जीवन-शक्ति है। कठिन उपदेश है। जीना भी एक कला है। लेकिन कला ही नहीं, तपस्या है। जियो तो प्राण ढाल दो जिन्दगी में, ढाल दो जीवनी रस के उपकरणों में! ठीक है। लेकिन क्यों ? क्या जीने के लिए जीना ही बड़ी बात है ? सारा संसार अपने मतलब के लिए ही तो जी रहा है। याज्ञवल्क्य बहुत बड़े ब्रह्मवादी ऋषि थे। उन्होंने अपनी पत्नी को विचित्र भाव से समझाने की कोशिश की कि सब कुछ स्वार्थ के लिए है। पुत्र के लिए पुत्र प्रिय नहीं होता, पत्नी के लिए पत्नी प्रिया नहीं होती — सब अपने मतलब के लिए प्रिय होते हैं — 'आत्मनस्तु कामाय सर्व प्रियं भवति'। विचित्र नहीं है यह तर्क ? संसार मे जहाँ कहीं प्रेम है, सब मतलब के लिए। सुना है, पश्चिम के हॉब्स और हेल्वेशियस जैसे विचारकों ने भी ऐसी ही बात कही है। सुन के हैरानी होती है। दुनिया में त्याग नहीं है, प्रेम नहीं है, परार्थ नहीं है, परमार्थ नहीं है — केवल प्रचण्ड स्वार्थ; भीतर की जिजीविषा —जीते रहने की प्रचण्ड इच्छा ही अगर बड़ी बात हो तो फिर यह सारी बड़ी-बड़ी बोलियाँ, जिनके बल पर दल बनाये जाते हैं, शत्रु मर्दन का अभिनय किया जाता है, देशोद्धार का नारा लगाया जाता है, साहित्य और कला की महिमा गायी जाती है, झूठ हैं। इसके द्वारा कोई-न-कोई अपना बड़ा स्वार्थ सिद्ध करता है। लेकिन अन्तरतम से कोई कह रहा है, ऐसा सोचना गलत ढंग से सोचना है। स्वार्थ से भी बड़ी कोई-न-कोई बात अवश्य है, जिजीविषा से भी प्रचण्ड कोई-न-कोई शक्ति अवश्य है। क्या है ?

याज्ञवल्क्य ने जो बात धक्कामार ढंग से कह दी थी वह अन्तिम नहीं थी। वे 'आत्मनः' का अर्थ कुछ और बड़ा करना चाहते थे। व्यक्ति की 'आत्मा' केवल व्यक्ति तक सीमित नहीं है, वह व्यापक है। अपने में सब और सब में आप- इस प्रकार की एक समष्टि-बुद्धि जब तक नहीं आती तब तक पूर्ण सुख का आनन्द भी नहीं मिलता। अपने-आपको दलित द्राक्षा की भाँति निचोड़कर जब तक 'सर्व' के लिए निछावर नहीं कर दिया जाता तब तक 'स्वार्थ' खण्ड- सत्य है, वह मोह को बढ़ावा देता है, तृष्णा को उत्पन्न करता है और मनुष्य को दंडनीय-कृपण- बना देता है। कार्पण्य दोष से जिसका स्वभाव उपहत हो गया है, उसकी दृष्टि म्लान हो जाती है। वह स्पष्ट नहीं देख पाता। वह स्वार्थ भी नहीं समझ पाता, परमार्थ तो दूर की बात है।

कुटज क्या केवल जी रहा है ? वह दूसरे के द्वार पर भीख माँगने नहीं जाता, कोई निकट आ गया तो भय के मारे अधमरा नहीं हो जाता, नीति और धर्म का उपदेश नहीं देता फिरता, अपनी उन्नति के लिए अफसरों का जूता नहीं चाटता फिरता, दूसरों को अपमानित करने के लिए ग्रहें की खुशामद नहीं करता। आत्मोन्नति हेतु नीलम नहीं धारण करता, अँगूठियों की लड़ी नहीं पहनता, दाँत नहीं निपोरता, बगलें नहीं झाँकता। जीता है और शान से जीता है- काहे वास्ते, किस उद्देश्य से! कोई नहीं जानता। मगर कुछ बड़ी बात

है। स्वार्थ के दायरे से बाहर की बात है। भीष्म पितामह की भाँति अवधूत की भाषा में कह रहा है: 'चाहे सुख हो या दुख, प्रिय हो या अप्रिय, जो मिल जाय उसे शान के साथ, हृदय से बिल्कुल अपराजित होकर, सोल्लास ग्रहण करो। हार मत मानो'।

सुखं वा यदि वा दुःखं प्रियं वा यदि वाऽप्रियम्
प्राप्तं प्राप्तमुपासीतं हृदयेनपराजितः।

शान्तिपर्व 25, 1, 26

हृदयेनपराजितः ! कितना विशाल वह हृदय होगा, जो सुख से, दुःख से, प्रिय से, अप्रिय से विचलित न होता होगा! कुटज को देखकर रोमांच हो जाता है। कहाँ मिली है यह अकुतोभया वृत्ति, अपराजित स्वभाव, अविचल जीवन-दृष्टि!

जो समझता है कि वह दूसरों का अपकार कर रहा है वह अबोध है, जो समझता है कि दूसरे उसका उपकार कर रहे है, वह भी बुद्धिहीन है। कौन किसका अपकार करता है, कौन किसका उपकार कर रहा है ? मनुष्य जी रहा है, केवल जी रहा; अपनी इच्छा से नहीं, इतिहास-विधाता को योजना के अनुसार। किसी को उससे सुख मिल जाये, बहुत अच्छी बात है, नहीं मिल सका, कोई बात नहीं, परन्तु उसे अभिमान नहीं होना चाहिए। सुख पहुँचाने का अभिमान यदि गलत है, तो दुःख पहुँचाने का अभिमान तो नितान्त गलत है।

दुख और सुख तो मन के विकल्प हैं। सुखी वह है जिसका मन वश में है, दुःखी वह है जिसका मन परवश है। परवश होने का अर्थ है खुशामद करना, दाँत निपोरना, चाटुकारिता, हाँ- हजूरी। जिसका मन अपने वश में नहीं वही दूसरे के मन का छन्दावर्त्तन करता है, अपने को छिपाने के लिए मिथ्या आडम्बर रचता है, दूसरों को फँसाने के लिए जाल बिछाता है। कुटज इन सब मिथ्याचारों से मुक्त है। वह वशी है। वह वैरागी है। राजा जनक की तरह संसार में रहकर, सम्पूर्ण भोगों को भोगकर भी उनसे मुक्त है। जनक की ही भाँति वह घोषणा करता है : 'मैं स्वार्थ के लिए अपने मन को सदा दूसरे के मन में घुसाता नहीं फिरता, इसलिए मैं मन को जीत सका हूँ, उसे वश में कर सका हूँ :

नाहमात्मार्थमिच्छामि मनोनित्यं मनोन्तरे।
मनो में निर्जितं तत्मात् वशे तिष्ठति सर्वदा।

कुटज अपने मन पर सवारी करता है, मन को अपने पर सवार नहीं होने देता। मनस्वी मित्र, तुम धन्य हो।

कलाकार की व्यक्तिगत ईमानदारी : एक

गजानन माधव 'मुक्तिबोध'

लेखक परिचय :

गजानन माधव 'मुक्तिबोध' का जन्म 13 नवम्बर सन् 1917 ई० को ग्वालियर के मुरैना जिले के श्योपुर कस्बे में एक मराठी ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके पिता माधव जी ग्वालियर के पुलिस विभाग में अधिकारी थे। मुक्तिबोध जी की प्रारंभिक शिक्षा सुचारू रूप से नहीं हो पाई। उन्होंने हिन्दी में एम.ए. किया। पिता के सेवानिवृत्त होने के बाद परिवार के भरण-पोषण की जिम्मेदारी इनके कंधों पर आ गई। उन्होंने बड़ानगर के मिडिल स्कूल, शारदा शिक्षा सदन और उज्जैन के मॉडल हाई स्कूल में अध्यापन कार्य किया। विद्यार्थी जीवन से ही मुक्तिबोध जी रचनाएं लिखने लगे थे। इनकी रचनाएँ 'कर्मवीर', 'वीणा' आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी थीं। प्रारंभ में इन पर छायावादी प्रभाव रहा लेकिन बाद में वे मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित हुए और उनके विचारों में क्रांतिकारी परिवर्तन आया। मुक्तिबोध हिन्दी कविता की नई धारा के कवि हैं। इनकी कविताओं में बिंब, फैंटेसी, आत्मसंघर्ष स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ता है।

इनकी प्रमुख रचनाओं में 'कामायनी ; एक पुनर्विचार', 'नयी कविता का आत्मसंघर्ष', आलोचनात्मक कृतियाँ हैं। 'चाँद का मुँह टेढ़ा' है (काव्य संग्रह), 'काठ का सपना', 'विपात्र', 'अंधेरे में' आदि हैं।

इनकी मृत्यु 7 फरवरी सन् 1964 ई० को पक्षाघात से हो गई।

मेरी डायरी पर बहुत कम बहस हुआ करती है। लेकिन कल हो ही गयी। वो जो यशराज हैं, न? वही, वही! उस गली में रहते हैं। नहीं, नहीं, उनकी वकालत नहीं चलती। हाँ, यूँ ही हैं, यों आदमी काबिल हैं। बी. एस. सी. बी. टेक., एल.एल.बी. लेकिन बिल्कुल बेरोजगार हैं। इस शहर में उन्हें सब जानते हैं। हँसते हैं उन पर। वे बेरोजगार हैं न, इसलिए। उनके चेहरे पर हमेशा शनीचरी छायी रहती है।

खैर, तो वसुधा के लिए लिखी गयी ताजी-ताजी डायरी उन्हें सुनाने का मुझे जब सौभाग्य प्राप्त हुआ, तो मैं बड़ा खुश था। क्या तीर मारा है मैंने! यशराज गरदन नीचे डाले मेरी डायरी को चुपचाप सुन रहे थे। जब सुनना खत्म हुआ तो बहुत ही मन्थर गति से उन्होंने अपना सिर ऊँचा उठाया। कहने लगे, ''यह डायरी एकदम फ्रॉड है!''

मुझ पर वज्रपात हो गया था। काटो तो खून नहीं। नाड़ी खिसक गयी। यशराज ने अपना चेहरा ऐसा बिगाड़ लिया था, मानो उनकी जबान का स्वाद एकदम कड़ुआ हो उठा हो!

डायरी मैंने बहुत मेहनत से बनायी थी। परसाईजी के पत्र-रूपी पिस्तौलों से सम्प्रेरित होकर मैंने इतनी मेहनत की। नतीजा क्या निकला....धूल......राख.......बालू!

मैंने अपने मन को काफी नसीहत दी। उसकी पीठ थपथपायी। लेकिन नि:सन्देह उस समय मेरा चेहरा बहुत पीला हो गया, क्योंकि मैंने उन क्षणों का अनुभव किया कि चेहरे का खून निचुड़ता हुआ दिल में टपक रहा है। मैंने यशराज की तरफ जब देखा तो मुझे सन्देह हुआ कि वह भी मुझ पर हँस रहा है।

मैंने अपने को सँवारते-सम्हालते हुए, और शब्दों के लिए भटकते हुए कहा, ''तुम भले ही फ्रॉड कह लो। इसमें व्यक्तिगत ईमानदारी जरूर है! डायरी मेरी व्यक्तिगत ईमानदारी का सबूत है।''

यशराज ने अपनी मुसकान दबा ली। उसके होंठों की इस छोटी-सी हलचल से मुझे घाव-सा लग गया। मैं प्रयत्न करने लगा कि मेरी आँखों में क्रोध या खून दौड़ जाये। लेकिन देह में रक्त ही नहीं था। दूसरे, अगर मैं अकड़ने का नाट्य भी करता तो भी बात न बनती, क्योंकि वैसा करना मेरी बौद्धिक संस्कृति के मानदण्डों के बिल्कुल विपरीत था।

अब तक का इतिहास यह है कि मैं अपनी बुद्धि द्वारा हृदय को सम्पादित और संशोधित करता आया हूँ। यह प्रक्रिया बिल्कुल बचपन ही से चल रही है। जिन्दगी एक महाविद्यालय या विश्वविद्यालय नहीं हैं। वह एक प्राइमरी स्कूल है, जहाँ टाट-पट्टी पर बैठना पड़ता है जरा-सी बात पर चाँटे के आघात की सारी संवेदनाएँ गालों पर झेलनी पड़ती हैं। जी हाँ! इस जिन्दगी का यही हाल है। भय, आतंक, विचित्र आशंकाएँ, अजीबो-गरीब उलझाव, फटी हुई टाट-पट्टियाँ, पुराने स्याही-रंगे टेबिल, गुरूजी की भयानक दुतरफा मूँछ और घर में माता-पिता की डाँट-फटकार, और बच्चे का कोमल छोटा-सा शरीर!

सोचा था कि जल्दी -जल्दी बड़ा हो जाऊँगा। ऊँचा, तगड़ा, मोटा। फिर जिन्दगी प्राइमरी स्कूल न रहेगी। लेकिन, नहीं! ज्यों-ज्यों बड़ा होता गया, खून सूखता गया। ऊँचा हुआ, साथ ही जर्जर भी। जिन्दगी पहले से भी बदतर प्राइमरी स्कूल होती गयी। जी हाँ, जिन्दगी-भर पाठ पढ़ना है। सिर्फ पहाड़े पढ़कर ही काम नहीं चलने का। गुणा-भाग की नयी-से-नयी कतर-ब्यौंत करनी पड़ेगी। अँगुलियों में स्याही, कमीज पर नीले दाग, होंठों के एक सिरे पर नीला रंग। मरने तक प्राइमरी स्कूल ही रहेगी यह जिन्दगी! वही पुरानी फटी टाट-पट्टी मानो मेरी कविता की एक पंक्ति!

यशराज की बात अलग है। वह आला आदमी है। वह आइंस्टाइन की बात करता है। प्लैंक और ला प्लॉस उसकी जबान पर नाचते हैं। 'मैं'? इस 'मैं' को नष्ट कर दो! भारतीय संस्कृति का यह सन्देश है।

यशराज का शब्द-प्रवाह मेरे कानों में बहा, ''व्यक्तिगत ईमानदारी का क्या अर्थ है? अधिक-से-अधिक वह अभिव्यक्ति की ईमानदारी है। इससे अधिक कुछ नहीं! तुममें तो अभिव्यक्ति की ईमानदारी भी नहीं है?''

यशराज न मालूम क्या कहता गया। मैं तो अपने मन में यह सोच रहा था कि मुझे तो बुद्धि के द्वारा अपने हृदय को सम्पादित और संशोधित करना है, उसमें पाद-टिप्पणियाँ जोड़नी हैं, भूमिका लिखनी है, सबके पीछे निर्देश-सूची भी तो जोड़ देनी है। किन्तु यह सम्पादन और संशोधन क्या कभी भी पूरा होगा? क्या कभी भी मैं मास्टरपीस की भाँति उसे उपस्थित कर सकूँगा? शायद यह सम्भव ही नहीं है। कल ही बूढ़े, बहुत बूढ़े, पिताजी ने मुझे कहा था कि आखिरी साँस छूटने तक नया सीखना पड़ता है, अपने-आप में संशोधन करते रहना पड़ता है, लगातार सीखते जाना और नये-नये पाठ पढ़ना पड़ता है। ऐसा!

मैंने यशराज से आत्मस्वीकृति के स्वर में कहा, ''व्यक्तिगत ईमानदारी का अर्थ है–जिस अनुपात में, जिस मात्रा में जो भावना या विचार उठा है, उसको उसी मात्रा में प्रस्तुत करना। जो भाव या विचार जिस स्वरूप को लेकर प्रस्तुत हुआ है उसको उसी स्वरूप में प्रस्तुत करना लेखक का धर्म है!''

यशराज ने जिद्दी आवाज में कहा, 'क्या उसका धर्म यहीं तक सीमित है? यदि वह यहीं तक सीमित है, तो वह व्यक्तिगत ईमानदारी भी नहीं है, अभिव्यक्ति की ईमानदारी भी नहीं।''

यशराज से बहस करने की मेरी तबीयत नहीं हो रही थी। लगता था, अगर कोई व्यक्ति एक कप चाय दे दे तो नसें गरमा जायें। फिर शायद बहस के काबिल हो सकूँ। फिर भी, अगर मैं जवाब न देता तो बहुत बुरा-सा दीखता। आखिर ऐसी भी क्या बात है! जरा इत्मीनान से काम लो!

मैंने कहा, ''कैसे?''

यशराज पिस्तौल से छूटी हुई गोली की भाँति उड़ता गया। उसने कहा, 'जो भाव या जो विचार, जिस स्वरूप को लेकर जिस मात्रा में और जिस अनुपात में, प्रस्तुत हुआ है, उसको उसी स्वरूप में प्रस्तुत करना एकदम नाकाफी है। महत्व की बात यह है कि वह भाव या वह विचार किसी वस्तु-तथ्य से सुसंगत है या नहीं। 'व्यक्तिगत ईमानदारी' का नारा देनेवाले लोग, असल में भाव या विचार के सिर्फ 'सब्जेक्टिव' पहलू-केवल आत्मगत पक्ष-के चित्रण को ही महत्त्व देकर, उसे 'भाव-सत्य' या 'आत्म-सत्य' की उपाधि देते हैं। किन्तु भाव या विचार का एक ऑब्जेक्टिव पहलू अर्थात् वस्तुपरक पक्ष भी होता है। आजकल लेखन-कार्य में करते समय आत्मपरक पक्ष को प्रधानता दी जाती है वस्तुपरक पक्ष को नहीं। इस रवैये का असर टैकनीक पर पड़ता है।''

यशराज की आँखें देखने के काबिल थीं। वह मुझे इस तरह देख रहा था मानों झिड़क रहा हो। किन्तु उसके चेहरे की ओर नहीं, वरन् उसकी बातों की ओर मैं ध्यान देने लगा।

यशराज कहता गया, 'मध्ययुगीन भारतीय काव्य में, कुछ महत्त्वपूर्ण अपवादों को छोड़, प्रधान प्रवृति वस्तुपक्ष के वर्णन की ओर ही अधिक रही। इस प्रवृत्ति ने आत्मपक्ष को गौण स्थान दिया। नये छायावादी युग ने आत्मपक्ष को ही प्रधान स्थान दिया और वस्तुपक्ष को गौण। यदि हिन्दी की नयी कविता को साहित्य के इतिहास में, या यूँ कहिए कि संस्कृति के इतिहास में, महत्त्वपूर्ण पार्ट अदा करना है, तो उसे काव्य की प्रकृति तथा शिल्प में आत्मपक्ष और वस्तुपक्ष का समन्वय उपस्थित करना होगा।''

यशराज ने विजेता की आँखों से मुझे देखा। निःसन्देह मुझे पराजित होना पड़ा। मैंने दो सेर का अपना सिर हिलाकर उसकी हाँ-में-हाँ मिलायी। तब एकाएक मुझे भान हुआ मानो मेरे मस्तक की सन्दूक में सचमुच आलू और भंटे भरे हैं। उनकी तो तरकारी भी नहीं हो सकती।

इसके बावजूद मैं यशराज की बात ज्यादा ध्यान से सुनने लगा। मुझे प्रतीत हुआ कि उसे ऐसा कुछ कहना है जो मेरे लिए मूल्यवान् भी सिद्ध हो सकता है।

मैंने प्रार्थना के स्वर में कहा, ''यशराज, मैं नयी कविता का कोई प्रवक्ता नहीं हूँ। मैं तुम्हारी बात मानने के लिए मान भी लूँ; किन्तु मेरे लिए यह एक बड़ा रहस्य ही बना रहेगा कि किस प्रकार वस्तुपक्ष से आत्मपक्ष का समन्वय स्थापित किया जाता है।''

यशराज ने बीच ही में बात काटते हुए कहा, ''मैं तो तुम्हारी डायरी के बारे में बात कर रहा था। उसके प्रसंग से नयी कविता पर चला आया। तुमने जगह-जगह, 'व्यक्तिगत ईमानदारी' का उल्लेख किया है। उसकी क्या परिभाषा है? मैं बहुत-सी 'नयी' कविताएँ पढ़ता हूँ। मुझे उनमें कुछ विशेष ईमानदारी नहीं मालूम होती।''

यशराज कहता गया, 'नयी कविता की भी एक लीक पड़ गयी है। वह भी एक ढर्रा है। ढर्रे में सब कुछ खपाया जा सकता है। एक बार शिल्पविधान पर अधिकार हो जाये कि बस........।

उसने कहना जारी रखा, 'यह तो तुम मानते हो कि भाव या विचार का एक वस्तुतत्त्व भी होता है। अर्थात् वह एक ऐसी मानसिक प्रतिक्रिया है, जो किसी वस्तुतत्त्व के प्रति की गयी है। इस मानसिक प्रतिक्रिया में सत्यत्व तो तभी उत्पन्न होगा, जब उसमें वस्तुतत्त्व का वस्तुमूलक आविर्भाव हो। साथ ही उसमें यह बोध भी सम्मिलित हो कि जो मानसिक प्रतिक्रिया उस वस्तुतत्त्व के प्रति हुई है, वह सही है या गलत, उचित है या अनुचित, ठीक अनुपात में है कि गलत अनुपात में। यदि ऐसा नहीं हुआ तो बड़ी अजीब बात होगी।

मैंने मुसकराकर कहा, ''हजरत, काव्य की प्रक्रिया ज्ञानात्मक प्रक्रिया नहीं है।''

यशराज ने जवाब दिया, ''ठीक! किन्तु ज्ञान और बोध के आधार पर ही भावना की इमारत खड़ी है। यदि ज्ञान और बोध की बुनियाद गलत हुई, तो भावनाओं की इमारत भी बेडौल और बेकार होगी। उसका असर काव्य-शिल्प पर भी होगा।''

यशराज यह कहकर क्षणमात्र चुप रहा, मानो साँस लेना चाह रहा हो। वह आगे कहता गया, ''व्यक्तिगत ईमानदारी वहाँ लक्षित होगी जहाँ, वस्तु का वस्तु-मूलक आकलन करते हुए, लेखक उस आकलन के आधार पर वस्तुतत्त्व के प्रति सही-सही मानसिक प्रतिक्रिया करे। यदि वह ऐसा नहीं करता, तो उसकी प्रतिक्रिया में सत्यत्व का आविर्भाव नहीं होगा।''

मैंने कहा, ''तुम्हारी परिभाषा यदि स्वीकार कर ली जाये, तो काव्य के क्षेत्र में एक दंगा-सा मच जायेगा। असलियत यह है कि तुम जिस वस्तुमूलक सत्य की बात करते हो, वह काव्य के भाव-सत्य से अलग है...'

यशराज ने आँखे फाड़कर मेरी तरफ देखना शुरू किया मानो मैं कोई जिराफ या कंगारू—जैसा अजीबो-गरीब प्राणी होऊँ।

मैंने भी बहुत गम्भीरता से उत्तर दिया, 'मैं भी अपनी बात कहाँ समझा पा रहा हूँ!'

दोनों ने अपने -अपने आसन बदले।

मैंने शून्य की ओर देखना शुरू किया। उस शून्य में मुझे दो बातें नजर आयीं। एक तो यह कि यशराज के अनुसार मानसिक प्रतिक्रिया जिस वस्तु के प्रति होती है, उस वस्तु का भी चित्रण परमावश्यक है। दूसरी यह कि सत्यत्व के आविर्भाव के लिए यह जरूरी है कि कवि उक्त वस्तुतत्व के प्रति सही-सही मानसिक प्रतिक्रिया करे।

यशराज के इस अभिमत पर मेरे मन ने इस प्रकार टिप्पणी की। मन कहता गया:अपनी मानसिक प्रतिक्रिया वस्तुतत्व के प्रति सही-सही है या नहीं ---- इसकी कसौटी क्या है? मेरे खयाल से कवि-

लेखक अपने दृष्टिकोण से किसी वस्तुतत्व के प्रति प्रतिक्रिया करता है। माना कि मानसिक प्रतिक्रिया में संवेदना अन्तर्भूत है, किन्तु उसमें दृष्टि या दृष्टिकोण भी अन्तर्भूत है। संवेदना और दृष्टि दोनों से मिलकर मानसिक प्रतिक्रिया होती है। हाँ, यह आवश्यक नहीं है कि, मानसिक प्रतिक्रिया में संवेदना अन्तर्भूत है, किन्तु उसमें दृष्टि या दृष्टिकोण भी अन्तर्भूत है। संवेदन और दृष्टि दोनों से मिलकर मानसिक प्रतिक्रिया होती है। हाँ, यह आवश्यक नहीं है कि, मानसिक प्रतिक्रिया करते समय, कवि उस दृष्टि या दृष्टिकोण के पीछे रहनेवाली, अर्थात् उसकी पार्श्वभूमि के रूप में रहनेवाली, अपनी सम्मूर्ण विचारधारा से पूर्णत; सचेत हो। मनुष्य के ध्यान-रूपी फोकस में सारी वस्तुएँ एक साथ नहीं रह सकतीं। किन्तु ध्यान अलग चीज है, मन अलग बात है। ध्यान में तो वस्तुतत्व है, उस वस्तुतत्व के प्रति संवेदनात्मक प्रतिक्रिया की गयी है; किन्तु उस प्रतिक्रिया में प्रच्छन्न रूप से अथवा अर्ध-सचेत रूप में, कवि की दृष्टि या दृष्टिकोण अवश्य रहता है। यह दृष्टिकोण अनिवार्यतः बौद्धिक ही होता है, यह नहीं कहा जा सकता। हम उसके दृष्टिकोण को रुख या रवैया भी कह सकते हैं। मजेदार बात यह है कि कभी-कभी मानसिक प्रतिक्रिया करते समय तो एक रुख या दृष्टि रहती है, किन्तु मन एक इकाई नहीं होता। उस इकाई के भीतर दुई भी होती है। ऐसी स्थिति में मानसिक प्रतिक्रिया के भीतर एक रुख, और उस प्रतिक्रया को सम्पादित और संशोधित करने वाली एक और दृष्टि रहती है। विवादियों के एक पक्ष का कहना है कि मानसिक प्रतिकिया का यह संशोधन-सम्पादन अनावश्यक है, गलत है, खतरे से भरा हुआ है। यहाँ बेईमानी हो सकती है, होती है, जान-बूझकर की जाती है। इसलिए होना यह चाहिए कि व्यक्तिगत मानसिक प्रतिक्रिया को, ज्यों-का-त्यों, ठीक-ठाक अनुपात और मात्रा में, प्रकट किया जाये।

उनके इस अभिमत में बहुत कुछ सार है। काव्य में लम्बी-चौड़ी बात हाँकने-वाले, स्वाँग करनेवाले, अपने को मसीहा और क्रान्तिकारी समझकर बात करनेवाले लोग, छोटी-सी मानसिक प्रतिक्रिया को अपनी दृष्टि के अनुसार बहुत बढ़ा चढ़ाकर रखते है। वे एक ऐक्टर हैं, नट हैं। वास्तविक प्रेम करने का आत्मबल उनमें बिलकुल भी नहीं है; किन्तु स्वाँग ऐसा करते हैं, मानो वे अपनी प्रेमिका के बिना जी नहीं सकते। अगर हम मानसिक प्रतिक्रिया को ज्यों-का -त्यों, स्वाभाविक अनुपात और मात्रा में, व्यक्त करने का आग्रह नहीं करते, उस आग्रह को महत्त्व नहीं देते, तो काव्य में ऐसे अभिनेता तथा स्वाँगवाले लोग, लम्बी-चौड़ी बात हाँकनेवाले सज्जन, बिला शक एक झूठा साहित्य पैदा कर देते हैं। ऐसे लोग, मन की इकाई में जो दुई है उसकी प्रकृति के अनुसार, अपनी मूल मानसिक प्रतिक्रिया को सम्पादित और संशोधित करते हैं। कहते हैं कि काव्य एक सांस्कृतिक प्रक्रिया है— मात्र व्यक्तिगत नहीं। इसलिए उन्हें काव्य-सृजन के दौरान (मन के भीतर) अभिनेतृत्व करने, स्वागँ रचने, लम्बी-चौड़ी हाँकने, आदि-आदि की पूरी छूट है। वे कहते हैं कि काव्य एक सांस्कृतिक संस्था है, वह मात्र व्यक्तिगत कमरा नहीं।

खैर, बड़े-बड़े शब्दों को जाने दीजिए। मैं भी मानसिक प्रतिक्रिया को सम्पादित और संशोधित करने की बात कहता आया हूँ। मेरे इस मन्तव्य का क्या वास्तविक अर्थ है? और यह यशराज जब मानसिक प्रतिक्रिया के सहीपन की बात करता है, वस्तुतत्व के प्रति सही-सही मानसिक प्रतिक्रिया करने पर जोर देता है, तो उसकी इस बात का निर्देशक महत्त्व क्या है? क्या यशराज यह कहना चाहता है कि कवि जीवन - जगत् के प्रति वास्तविक विश्व-दृष्टि का विकास करे और वह विश्व दृष्टि उसकी मानसिक प्रतिक्रिया की

प्रेरक हो ? यदि सचमुच उसका यही मत है तो मेरी और उसकी पोजीशंस में विशेष भेद नहीं है। मैं इतनी सब बातें क्षण-भर में सोच गया। भीतर का मेरा अपना सारा विचार-जगत् मूर्तिमान् हो उठा। किन्तु यशराज की बातों का प्रवाह कहीं और जा रहा था।

वह कहता गया, ''व्यक्तिगत ईमानदारी वह है, जहाँ लेखक, वस्तु-मूलक आकलन करते हुए, उस आकलन के आधार पर वस्तुतत्त्व के प्रति सही मानसिक प्रतिक्रिया करे। यदि वह ऐसा नहीं करता, तो उसकी प्रतिक्रिया में सत्यत्व का आविर्भाव उत्पन्न नहीं होगा। यही न ?''

मैंने जवाब दिया, ''तुम्हारी परिभाषा यदि स्वीकार कर ली जाये तो काव्य के क्षेत्र में एक हंगामा मच जायेगा। काव्य का सत्य, शासकीय या वैज्ञानिक सत्य नहीं है। यदि वस्तुत; वैसा होता, तो अब तक दुनिया में जितना भी काव्य-साहित्य उत्पन्न हुआ है वह तुम्हारी परिभाषा का अनुगमन करता।''

यशराज बीच में बोल उठा, ''मैं तो व्यक्तिगत ईमानदारी की बात कर रहा हूँ। मैं तो यह कहना चाहता हूँ कि हिन्दी में (मैं हिन्दी की बात ही बोल सकता हूँ) बहुतेरी ऐसी कविताएँ हैं जो बिलकुल फ्रॉड हैं। जिसे तुम 'नयी कविता' कहते हो, उसमें भी फ्रॉड की कमी नहीं हैं।'

शायद यशराज ने मुझे उतेजित करने के लिए यहा कहा होगा। लेकिन ईश्वर की कुछ ऐसी कृपा रही कि मैं विचलित नहीं हुआ। मैंने शान्त भाव से तिरछी मार की। मैंने कहा, ''तुम्हारी आलोचना क्या फ्रॉड नहीं है।''

मैंने कुछ आलोचकों के नाम भी लेना चाहे। लेकिन कुछ सोचकर चुप रह गया। आलोचक भी तो झूठ के-साथ कभी-कभी सच बोल जाया करते हैं। हाँ, यह होता है, उनके मसीहाई बौद्धिक अहंकार के बावजूद।

यद्यपि मैं शान्त था, किन्तु उत्तेजना घर कर रही थी। हमारी और यशराज की आपसी सिर-फुटौवल कई बार हो भी चुकी है। इसलिए, उससे घबराने की बात नहीं थी।

(वसुधा में प्रकाशित, मार्च 1960। एक साहित्यिक की डायरी में संकलित)

कहानी

भाई–बहन

बंग महिला (राजेन्द्र बाला घोष)

लेखिका परिचय :

बंग महिला का वास्तविक नाम 'राजेन्द्र बाला घोष' है। इनका जन्म सन् 1882 ई० में हुआ था। इनके पिता बाबूराम प्रसन्न घोष मिर्जापुर के प्रतिष्ठित नागरिक थे। वह जार्डन कम्पनी में अधिकारी थे। उनकी माता नीरद वासीनी घोष विदुषी महिला थीं। माता के संरक्षण में ही इनकी शिक्षा दीक्षा हुई। इन्हें बंग महिला के नाम से डा. रामचंन्द्र शुक्ल ने संबोधित करना प्रारम्भ किया। इन्होंने लेख, जीवनी, कहानी, आदि से हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया।

इनकी प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं *— कुंभ में छोटी बहू, दुलाई वाली, भाई–बहन, हृदय परीक्षा, मन की दृढ़ता, आदि उनकी कहानियाँ हैं। जोधाबाई, अबुल फजल, बैकुण्ठ दास, उनके द्वारा लिखित जीवनी साहित्य है। स्त्रियों की शिक्षा, हमारे देश की स्त्रियों की दशा आदि उनके द्वारा लिखे लेख हैं। 'दुलाईवाली' इनकी प्रसिद्ध कहानी है जो हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी के नाम से प्रसिद्ध है! इनकी कहानी संग्रह का नाम 'कुसुम' है।*

श्रीमती बंगमहिला की यह रचना सन् 1908 में 'बालप्रभाकर' खंड 3, अंक 1 में प्रकाशित हुई थी। इसमें स्वदेश और स्वदेशी वस्तुओं की ओर, सरल शब्दों में बालकों का ध्यान आकृष्ट किया गया है।

इनकी मृत्यु 24 फरवरी 1949 ई० को मिर्जापुर में हुई थी।

आज नाटी इमली का भरत मिलाप है। बाबू जयरामदास जी अपने दोनों लड़के लड़की को लेकर मेला देखने को जा रहे हैं। दोनों भाई बहिन पिता के दोनों हाथ पकड़ कर बड़ी खुशी के साथ जा रहे थे। भाई का नाम शायद जो कुछ हो, पर रंग खूब गोरा होने से उसे सब लोग साहब कहकर पुकारते थे। साहब की उमर कोई ग्यारह साल की थी पर बहिन की उमर कोई छह सात वर्ष की होगी। उसका नाम तो सुन्दर देई था पर लोग प्यार से उसे सुंदरिया कहा करते थे। एक आने की पूँजी लेकर सुन्दर मेला देखने चली थी। उसी के भरोसे जो चीजें देखती थी उसी पर टूट पड़ती थी। उसके इस भोलेपन पर साहब विचारे को बड़ी हँसी आती थी। जब सुन्दर दस बाहर चीजों का नाम लेकर कहने लगी, 'मैं यह मोल लूंगी' 'वह मोल लूंगी,' तब साहब ने कहा–वाह जी! तुम्हारे पास तो तीन चार पैसे कुल हैं, तुम इतनी चीजें कैसे ले सकती हो? मेरे पास बहुत से पैसे हैं, मैं सब कुछ खरीदूँगा; केला, नारंगी, अमरूद, रेऊड़ी, नानखताई, वगैरह। सुन्दर पर साहब की इस बात का कुछ भी प्रभाव न पड़ा क्योंकि सुन्दर की माँ प्राय: उससे कहा करती थी 'बेटी तुम भैया से छोटी हो न। तुम्हें सब चीज में भैया से कमती हिस्सा लेना चाहिए।' माँ की यह बातें सुन्दर हमेशा ध्यान में रखती

थी, और उसे यह भी दृढ़ विश्वास था कि मैं, चार ही पैसे में सब मोल ले सकती हूँ। इन सब कारणों से साहब का हौसला पूरा ना हुआ। जिसके हृदय में संतोष है उसी ने सब कुछ भर पाया। साहब को सब है और मेरा कुछ नहीं है, यह बात उसे कभी दु:ख नहीं दे सकती। निज अवस्था में संतुष्ट रहना और उसी के अनुसार चलना बुद्धिमानों का काम है।

साहब सुन्दर की मूर्खता की बातें पिता से कहने लगा; वह बेचारे साहब के मतलब को न समझकर बोले, 'हाँ बेटा पहिले मेला देख लो, फिर लौटते वक्त सब ले देंगे।' लाचार होकर साहब मदरसे के मौलवी जी की तरह अथवा स्कूल के नीचे दरजे के मास्टर की भाँति बहिन को समझाने लगा। सुन्दर का चार पैसा अपने हाथ में लेकर, एक-एक चीज का नाम कहता हुआ एक-एक पैसा सुन्दर को देकर बोला, 'लो हो न गया। चार पैसे में चार ही चीजें मिलेंगी कि ज्यादे? फिर साहब अपना सब पैसा एक हाथ में लेकर एक-एक चीज के नाम से दूसरे हाथ पर रखता गया, और बोला, 'देखो मैं तो सब चीजें ले सकूँगा न। तब बिचारी सुन्दर देई बड़े भोलेपन से भाई के मुँह की ओर ताकती हुई बोली 'तो क्या उसमें से थोड़ा मुझे भी न दोगे भईया?' सुन्दर की इस बात पर साहब को लज्जित होना पड़ा। मेला देखकर निज इच्छानुसार चीजें लेकर दोनों भाई बहिन पिता के संग घर लौट आए।

एक दिन शाम को साहब के बड़े भाई श्रीराम दिए के उजियाले में बैठकर किताब पढ़ रहे थे, इतने में साहब और सुन्दर दोनों आकर वही बैठ गए। सुन्दर बोला 'बड़े भइया! देखो साहब भइया की किताब में कैसी अच्छी रेलगाड़ी की तस्वीर है, तुम्हारे किताब में तो कोई तस्वीर ही नहीं है। इतने में साहब बोल बैठा 'अजी तुम तो तस्वीर की गाड़ी कहती हो! मैं आज जो खेलने की रेलगाड़ी पाँच आने में लाया हूँ सो तुमने देखी ही नहीं।' यह कहकर साहब चट उस रेलगाड़ी को लाकर बड़े भाई को और छोटी बहन को बड़े उत्साह से दिखाने लगे। सुन्दर ने भी एक पैसे में एक मिट्टी का खिलौना खरीदा था, वह भी चट उस खिलौने को ले आई। सुन्दर के इस काम पर साहब हँसकर बोले, 'एक पैसे का मिट्टी का खिलौना लेकर चली है दिखाने, देखो मेरी गाड़ी में चाबी लगा देने से कैसी दौड़ती है।' सुन्दर बिचारी उदास होकर बड़े भाई की तरफ देखने लगी, तब श्रीराम हँसकर बोले, 'तुम्हारा खिलौना बहुत अच्छा है सुन्दर। साहब तो पूरा बेवकूफ है नाहक पाँच आने पैसे दूसरे देश के कारीगर को दे आया।' साहब ने कुछ रूखेपन से जवाब दिया, 'दूसरा देश कैसा? मैं तो रामदीन बिसाती से यह गाड़ी मोल लाया हूँ।'

श्रीराम-हाँ मोल तो तुमने रामदीन से ली सही। लेकिन रामदीन ने इसे बनाया तो नहीं है, बनाया है जर्मनी के कारीगरों ने, आखिरकार तुम्हारा नहीं तो बिसाती का पैसा उसके यहाँ गया कि नहीं। वे लोग तो हर तरह से मोटे ताजे-हैं और बेचारे यहाँ के जो कुम्हार और कारीगर हैं उन्हें दिन भर में नमक रोटी भी मुश्किल से मिलती है, वे लोग यदि पाँच आने पैसे पावें तो उनको पेट भर खाने को मिल जाय। खैर सुनो साहब। इस समय हम तुम्हें कुछ न कहते, न तुम्हे रंज होता, किन्तु परमेश्वर का यह नियम है कि जो दूसरे किसी को नीचा दिखाना चाहता, है, वह पहले आप ही नीचा देखता है। न तुम सुन्दरिया को नीचा दिखाते, न आप देखते। तुम चाल चलन में, पढ़ने लिखने में अच्छे हो, पर बड़े ही अभिमानी हो। शायद यह दोष तुम्हारे नाम से उत्पन्न हुआ होगा। अच्छा अबसे तुम अपने असली नाम से 'हरिराम' कहकर पुकारे जाओगे। अब इस खिलौने के बारे में दो चार बातें और सुन लो। यह तो तुमने जान लिया कि इसे बनाया है किसने, अब जरा

सोचकर देखो, इसे खरीदने से हमारे देश को हानि और दूसरे देश को लाभ पहुँचता है या नहीं। आज तुमने इसे मोल लिया है, दो दिन के पीछे तोड़ फोड़कर फेंक दोगे, परंतु ऐसे-ऐसे तुच्छ खिलौने के लिये कई लाख रुपए हर साल हिंदुस्तान से निकल जाते हैं। इसी तरह सुई, डोरा, कंघी, दियासलाई इत्यादि छोटी मोची चीजों के लिये भी कितने रुपए दूर देश वालों को दे देते हैं, उसका लेखा लगाने से छाती दहल जाती है और उसी के साथ थोड़े से मुनाफे पर चावल गेहूँ आदि गल्ले को बेच डालते हैं। इसमें दूसरों का कुछ दोष नहीं है, हम सब अपनी करनी से दीन से दीन, गरीब से गरीब, अधम से अधम हो रहे हैं। पर तब भी चेत नहीं होता। हम लोगों में यह एक भारी दोष है कि जितना कहते हैं उसका चौथाई भी नहीं कर सकते। यह बात तो सभी कहेंगे कि भारत का सब तरह से सत्यानाश हो रहा है, किन्तु उसकी बिगड़ती हुई दशा को सुधारने में बहुत ही कम मनुष्य बचे हुए हैं। आज तुम लड़के हो, कल तुम्हीं युवा पुरूष हो जाओगे, यदि चाहोगे तो अपने हाथ से इस गिरे हुए देश की बहुत कुछ भलाई कर सकोगे। तुमको चाहिए कि अपने देश की भलाई के लिये उपाय विचारो और सीखो-लड़कपन में जिस बात का प्रभाव मनुष्य पर पड़ जाता है, बड़े होने पर वह उसी अनुसार व्यवहार करता है। यदि तुम अभी से देशी चीजें काम में लाओगे, तो मैं स्वदेश की बनी हुई कोई उत्तम चीज तुम्हें इनाम दूँगा।

ऊपर लिखी हुई बातों को हुए आज बीस वर्ष हो गए हैं, अब बाबू हरिराम वर्मा बि०एल०—शहर के एक नामी वकीलों में से हैं। यद्यपि शहर में कई एक अच्छे-अच्छे पुराने वकील हैं किन्तु देश की भलाई के सब कामों में अगुआ होने के हेतु हरिराम सबसे ऊपर हो रहे हैं। हरिराम ने निज व्यय से मातृ भंडार नामक एक बहुत बड़ी दुकान खुलवाई है, जिसमें हर मनुष्य के काम लायक सब स्वदेशी बनी चीजें मिलती हैं। बाबू श्रीराम अपने छोटे भाई का इस भांति स्वदेश प्रेम और अपने उपदेश का प्रभाव देखकर बहुत ही सुखी होते हैं।

सुन्दर देई भी ग्यारह वर्ष की अवस्था में एक जमीदार की पतोहू हो गई, उसके पति भी एक देशहितैषी सज्जन हैं। अब सुन्दर देई अपने घर की मालकिन हुई है, और अपने पति के सद्गुणों और अच्छे कामों की सहकारिणी बनी है।

नशा

मुंशी प्रेमचंद

लेखक परिचय :

कलम के जादूगर मुंशी प्रेमचंद का जन्म वाराणसी जिले के लमही गाँव में 31 जुलाई 1880 ई० को हुआ। विद्यालयी शिक्षा पूर्ण करके इन्होंने कुछ वर्षों तक अध्यापन कार्य किया। शिक्षा विभाग में सहविद्यालय निरीक्षक के पद पर भी इन्होंने कार्य किया। बाद में तत्कालीन राजनैतिक आन्दोलनों से प्रभावित होकर इस पद से त्याग पत्र दे दिया और आजीवन साहित्य सृजन में लगे रहे। प्रेमचंद जी उर्दू में नवाब राय के नाम से लिखते थे। उर्दू में प्रकाशित प्रथम कहानी संग्रह 'सोजे वतन' अंग्रेजी सरकार द्वारा जब्त करने के बाद ये प्रेमचंद के नाम से हिन्दी में लिखने लगे। इन्होंने माधुरी, हंस, जागरण आदि पत्रिकाओं का सम्पादन किया।

इनकी प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं *— सेवा-सदन, कायाकल्प, निर्मला, प्रेमाश्रम, कर्मभूमि, रंगभूमि, गबन, गोदान इनके प्रमुख उपन्यास हैं। सोजे वतन, प्रेमद्वादशी, प्रेमपूर्णिमा आदि इनके कहानी संग्रह हैं। इनकी कहानियों को मानसरोवर (आठ भागों में) में संग्रहित किया गया है। कर्बला, संग्राम, बलि की वेदी इनके नाटक हैं। 'महाजनी सभ्यता' इनका निबंध है।*

प्रेमचंद जी अपने युग के प्रतिनिधि कथाकार थे। उनकी रचनाओं में तत्कालीन समस्याओं एवं कुरीतियों का यथार्थ निरूपण हुआ है। पूस की रात, बूढ़ी काकी, मंत्र, ईदगाह, पंचपरमेश्वर, नमक का दरोगा, बड़े घर की बेटी, नशा आदि इनकी बहुचर्चित कहानियाँ है। इनकी कहानियों में मानवीय संवेदना सजीव हो उठी है।

इनकी मृत्यु 8 अक्टूबर 1936 ई० को हुई।

ईश्वरी एक बड़े जमींदार का लड़का था और मैं एक गरीब क्लर्क का, जिसके पास मेहनत-मजूरी के सिवा और कोई जायदाद न भी। हम दोनों में परस्पर बहसें होती रहती थीं। मैं जमींदारों की बुराई करता, उन्हें हिंसक पशु और खून चूसने वाली जोंक और वृक्षों की चोटी पर फूलने वाला बंझा कहता। वह जमींदारों का पक्ष लेता; पर स्वभावत: उसका पहलू कुछ कमजोर होता था, क्योंकि उसके पास जमींदारों के अनुकूल कोई दलील न थी। यह कहना कि सभी मनुष्य बराबर नहीं होते, छोटे-बड़े हमेशा होते रहते हैं और होते रहेंगे, लचर दलीलें थीं। किसी मानुषीय या नैतिक नियम से इस व्यवस्था का औचित्य सिद्ध करना कठिन था। मैं इस वाद-विवाह की गर्मा-गर्मी में अक्सर तेज हो जाता और लगने वाली बात कह जाता; लेकिन ईश्वरी हारकर भी मुस्कराता रहता था। मैंने उसे कभी गर्म होते नहीं देखा शायद इसका कारण यह था कि वह अपने

पक्ष की कमजोरी समझता था। नौकरों से वह सीधे मुँह बात न करता था। अमीरों में जो एक बेदर्दी और उद्दंडता होती है, इसमें उसे भी प्रचुर भाग मिला था। नौकरों ने बिस्तर लगाने में जरा भी देर की, दूध जरूरत से ज्यादा गर्म या ठंडा हुआ, साइकिल अच्छी तरह साफ न हुई, तो वह आपे से बाहर हो जाता। सुस्ती या बदतमीजी उसे जरा भी बर्दाश्त न थी; पर दोस्तों से और विशेषकर मुझसे उसका व्यवहार सौहार्द और नम्रता से भरा होता था। शायद उसकी जगह मैं होता तो मुझमें भी वहीं कठोरताएँ पैदा हो जातीं, जो उसमें थीं, क्योंकि मेरा लोकप्रेम सिद्धांत पर नहीं, निजी दशाओं पर टिका हुआ था। वह मेरी जगह होकर भी शायद अमीर ही रहता, क्योंकि वह प्रकृति से विलासी और ऐश्वर्य-प्रिय था।

अब की दशहरे की छुट्टियों में मैंने निश्चय किया कि घर न जाऊँगा। मेरे पास किराये के लिए रूपये न थे और मै घर वालों को तकलीफ नहीं देना चाहता था। मैं जानता हूँ, वे मुझे जो कुछ देते हैं वह उनकी हैसियत से बहुत ज्यादा है। इसके साथ ही परीक्षा का भी ख्याल था। अभी बहुत कुछ पढ़ना बाकी था और घर जाकर कौन पढ़ता है। बोर्डिंग हाउस में भूत की तरह अकेले पड़े रहने को भी जी न चाहता था। इसलिए जब ईश्वरी ने मुझे अपने घर चलने का न्योता दिया तो मैं बिना आग्रह के राजी हो गया। ईश्वरी के साथ परीक्षा की खूब तैयारी हो जायेगी। वह अमीर होकर भी मेहनती और जहीन है।

उसने इसके साथ ही कहा— ''लेकिन भाई, एक बात का ख्याल रखना। वहाँ अगर जमींदारों की निन्दा की तो मुआमला बिगड़ जायेगा और मेरे घर वालों को बुरा लगेगा। वे लोग तो आसामियों पर इसी दावे से शासन करते हैं कि ईश्वर ने आसामियों को उनकी सेवा के लिए ही पैदा किया है। आसामी भी वही समझता है। अगर उसे सुझा दिया जाये कि जमींदार और आसामी में कोई मौलिक भेद नहीं है, तो जमींदारों का कहीं पता न लगे।''

मैंने कहा— ''तो क्या तुम समझते हो कि मैं वहाँ जाकर कुछ और हो जाऊँगा ?''

''हाँ, मैं तो यही समझता हूँ।''

''तो तुम गलत समझते हो।''

ईश्वरी ने इसका कोई जवाब न दिया। कदाचित उसने इस मुआमले को मेरे विवेक पर छोड़ दिया और बहुत अच्छा किया। अगर वह अपनी बात पर अड़ता तो मैं भी अपनी जिद पकड़ लेता।

।। २।।

सेकंड क्लास तो क्या मैंने कभी इंटर क्लास में भी सफर न किया था। अबकी सेकंड क्लास में सफर करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। गाड़ी तो नौ बजे रात को आती थी; पर यात्रा के हर्ष में हम शाम को ही स्टेशन जा पहुँचे। कुछ देर इधर-उधर सैर करने के बाद रिफ्रेशमेंट रूम में जाकर हम लोगों ने भोजन किया। मेरी वेशभूषा और रंग-ढंग से पारखी खानसामों को पहचानने में देर न लगी कि मालिक कौन है और पिछलग्गू कौन; लेकिन न जाने क्यों मुझे उनकी गुस्ताखी बुरी लग रही थी। पैसे ईश्वरी की जेब से गये। शायद मेरे पिता को जो वेतन मिलता है उससे ज्यादा इन खानसामों को इनाम-इकराम में मिल जाता हो। एक अठन्नी तो चलते समय ईश्वरी ने ही दी। फिर भी मैं उन सभी से उसी तत्परता और विनय की अपेक्षा

करता था, जिससे वे ईश्वरी की सेवा कर रहे थे। क्यों ईश्वरी के हुक्म पर सब के सब दौड़ते हैं, लेकिन मैं कोई चीज माँगता हूँ तो उतना उत्साह नहीं दिखाते। मुझे भोजन में कुछ स्वाद न मिला। यह भेद मेरे ध्यान को संपूर्ण रूप से अपनी ओर खींचे हुए था।

गाड़ी आयी, हम दोनों सवार हुए। खानसामों ने ईश्वरी को सलाम किया। मेरी ओर देखा भी नहीं।

ईश्वरी ने कहा— ''कितने तमीजदार हैं ये सब! एक हमारे नौकर हैं कि कोई काम करने का ढंग नहीं।''

मैंने खट्टे मन से कहा— ''इसी तरह अगर तुम अपने नौकरों को भी आठ आने रोज इनाम दिया करो तो इससे ज्यादा तमीजदार हो जायें।''

''तो क्या तुम समझते हो, यह सब केवल इनाम के लालच से इतना अदब करते हैं?''

''जी नहीं, कदापि नहीं। तमीज और अदब तो इनके रक्त में मिल गया है।''

गाड़ी चली। डाक थी। प्रयास से चली तो प्रतापगढ़ जाकर रूकी। एक आदमी ने हमारा कमरा खोला। मैं तुरन्त चिल्ला उठा— ''दूसरा दरजा है— सेकंड क्लास है।''

उस मुसाफिर ने डिब्बे के अन्दर आकर मेरी ओर एक विचित्र उपेक्षा की दृष्टि देखकर कहा— ''जी हाँ, सेवक भी इतना समझता है।'' और बीच वाली बर्थ पर बैठ गया। मुझे कितनी लज्जा आयी कह नहीं सकता।

भोर होते-होते हम लोग मुरादाबाद पहुँचे। स्टेशन पर कई आदमी हमारा स्वागत करने के लिए खड़े थे। दो भद्र पुरूष थे। पाँच बेगार। बेगारों ने हमारा लगेज उठाया। दोनों भद्र पुरुष पीछे-पीछे चले। एक मुसलमान था, रियासत अली; दूसरा ब्राह्मण था, रामहरख। दोनों ने मेरी ओर अपरिचित नेत्रों से देखा, मानो कह रहे हों, तुम कौवे होकर हंस के साथ कैसे?

रियासत अली ने ईश्वरी से पूछा—''यह बाबू साहब क्या आपके साथ पढ़ते हैं?''

ईश्वरी ने जवाब दिया— ''हाँ, साथ पढ़ते भी हैं और साथ रहते भी हैं। यों कहिए कि आप ही की बदौलत मैं इलाहाबाद में पड़ा हुआ हूँ, नहीं कब का लखनऊ चला आया होता। अब की मैं इन्हें घसीट लाया। इनके घर से कई तार आ चुके थे, मगर मैंने इन्कारी जवाब दिलवा दिये। आखिरी तार तो अर्जेंट था, उसकी फीस चार आने प्रति शब्द थी; पर यहाँ से उसका जवाब भी इन्कारी ही गया।''

दोनों सज्जनों ने मेरी ओर चकित नेत्रों से देखा। आतंकित हो जाने की चेष्टा करते हुए जान पड़े।

रियासत अली ने अर्द्धशंका के स्वर में कहा— ''लेकिन आप बड़े सादे लिबास में रहते हैं।''

ईश्वरी ने शंका निवारण की— ''महात्मा गांधी के भक्त हैं साहब। खद्दर के सिवा और कुछ पहनते ही नहीं। पुराने सारे कपड़े जला डाले। यों कहो कि राजा हैं। ढाई लाख सालाना की रियासत है, पर आपकी सूरत देखो तो मालूम होता है, अभी अनाथालय से पकड़कर आये हैं।''

रामहरख बोले— ''अमीरों का ऐसा स्वभाव बहुत कम देखने में आता है। कोई भाँप नहीं सकता।''

रिसायत अली ने समर्थन किया—आपने महाराज चाँगली को देखा होता तो दाँतों उँगली दबाते। एक गाढ़े की मिर्जई और चमरौधे जूते पहने बाजार में घूमा करते थे। सुनते हैं, एक बार बेगार में पकड़े गये थे, और उन्होंने दस लाख से कालेज खोल दिया।''

मैं मन में कटा जा रहा था; पर न जाने क्या बात थी कि यह सफेद झूठ उस वक्त मुझे हास्यास्पद न जान पड़ा। उसके प्रत्येक वाक्य के साथ मानो मैं उस कल्पित वैभव के समीपतर आता जाता था।

मैं शहसवार नहीं हूँ। हाँ, लड़कपन में कई बार लद्दू घोड़ों पर सवार हुआ हूँ। यहाँ देखा तो दो कलाँरास घोड़े हमारे लिए तैयार खड़े थे। मेरी तो जान ही निकल गयी। सवार तो हुआ; पर बोटियाँ काँप रही थीं। मैंने चेहरे पर शिकन न पड़ने दिया। घोड़े को ईश्वरी को पीछे डाल दिया। खैरियत तो यह हुई कि ईश्वरी ने घोड़ों को तेज न किया वरना शायद मैं हाथ-पाँव तुड़वाकर लौटता। संभव है, ईश्वरी ने समझ लिया हो कि वह कितने पानी में है।

ईश्वरी का घर क्या था, किला था। इमामबाड़े का-सा फाटक, द्वार पर पहरेदार टहलता हुआ, नौकरों का कोई हिसाब ही नहीं, एक हाथी बँधा हुआ। ईश्वरी ने अपने पिता, चाचा, ताऊ आदि सबसे मेरा परिचय कराया और उसी अतिशयोक्ति के साथ। ऐसी हवा बाँधी कि कुछ न पूछिए। नौकर-चाकर ही नहीं, घर के लोग भी मेरा सम्मान करने लगे। देहात के जमींदार, लाखों का मुनाफ़ा, मगर पुलिस कानस्टेबल को भी अफसर समझने वाले। कई महाशय तो मुझे हुज़ूर-हुज़ूर कहने लगे।

जब जरा एकांत हुआ, तो मैंने ईश्वरी से कहा— ''तुम बड़े शैतान हो यार, मेरी मिट्टी क्यों पलीद कर रहे हो ?''

ईश्वरी ने सुदृढ़ मुस्कान के साथ कहा—''इन गधों के सामने यही चाल जरूरी थी, वरना सीधे मुँह बोलते भी नहीं।''

जरा देर बाद एक नाई हमारे पाँव दबाने आया। कुँवर लोग स्टेशन से आये हैं, थक गये होंगे। ईश्वरी ने मेरी ओर इशारा करके कहा— ''पहले कुँवर साहब के पाँव दबा।''

मैं चारपाई पर लेटा हुआ था। मेरे जीवन नें ऐसा शायद ही कभी हुआ हो कि किसी ने मेरे पाँव दबाये हों। मैं इसे अमीरों के चोंचले, रईसों का गधापन और बड़े आदमियों की मुटमरदी और जाने क्या-क्या कहकर ईश्वरी का परिहास किया करता, और आज मैं पोतड़ो का रईस बनने का स्वाँग भर रहा था।

इतने में दस बज गये। पुरानी सभ्यता के लोग थे। नयी रोशनी अभी केवल पहाड़ की चोटी तक पहुँच पायी थी। अन्दर से भोजन का बुलावा आया। हम स्नान करने चले। मैं हमेशा अपनी धोती खुद छाँट लिया करता हूँ; मगर यहाँ मैंने ईश्वरी की भाँति अपनी धोती भी छोड़ दी। अपने हाथों अपनी धोती छाँटते शर्म आ रही थी। अंदर भोजन करने चले। होस्टल में जूते पहने मेज पर जा उठते थे। यहाँ पाँव धोना आवश्यक था। कहार पानी लिए खड़ा था। ईश्वरी ने पाँव बढ़ा दिये। कहार ने उसके पाँव धोये। मैंने भी पांव बढ़ा दिये। कहार ने मेरे पाँव भी धोये। मेरा वह विचार न जाने कहाँ चला गया था।

।। ४।।

सोचा था, वहाँ देहात में एकाग्र होकर खूब पढ़ेंगे, पर यहाँ सारा दिन सैर-सपाटे में कट जाता था। कहीं नदी में बजरे पर सैर कर रहे हैं, कहीं मछलियों या चिड़ियों का शिकार खेल रहे हैं, कहीं पहलवानों की कुश्ती देख रहे हैं, कहीं शतरंज पर जमे हैं। ईश्वरी खूब अंडे मँगवाता और कमरे में स्टोव पर आमलेट बनते। नौकरों का एक जत्था हमेशा घेरे रहता। अपने हाथ-पांव हिलाने की कोई जरूरत नहीं। केवल जबान हिला देना काफी है। नहाने बैठे तो आदमी नहलाने को हाजिर, लेटे तो दो आदमी पंखा झलने को खड़े। मैं महात्मा गांधी का कुँवर चेला मशहूर था। भीतर से बाहर तक मेरी धाक भी। नाश्ते में जरा भी देर न होने पाये, कहीं कुँवर साहब नाराज न हो जायें। बिछावन ठीक समय पर लग जाये, कुँवर साहब का सोने का समय आ गया। मैं ईश्वरी से भी ज्यादा नाजुक दिमाग बन गया था, या बनने पर मजबूर किया गया था। ईश्वरी अपने हाथ से बिस्तर बिछा ले; लेकिन कुँवर मेहमान अपने हाथों कैसे अपना बिछावन बिछा सकते हैं ? उनकी महानता में बट्टा लग जायेगा।

एक दिन सचमुच यही बात हो गयी। ईश्वरी घर में था। शायद अपनी माता से कुछ बातचीत करने में देर हो गयी। यहाँ दस बज गये। मेरी आँखें नींद से झपक रही थीं; मगर बिस्तर कैसे लगाऊँ ? कुँवर जो ठहरा। कोई साढ़े ग्यारह बजे महरा आया। बड़ा मुँहलगा नौकर था। घर के धंधों में मेरा बिस्तर लगाने की उसे सुधि न रही। अब जो याद आयी तो भागा हुआ आया। मैंने ऐसी डाँट लगायी कि उसने भी याद किया होगा।

ईश्वरी मेरी डाँट सुनकर बाहर आया और बोला—''तुमने बहुत अच्छा किया। यह सब हरामखोर इसी व्यवहार के योग्य हैं।''

इसी तरह ईश्वरी एक दिन एक जगह दावत में गया हुआ था। शाम हो गयी, मगर लैम्प न जला। लैम्प मेज पर रखा हुआ था। दियासलाई भी वहीं थी, लेकिन ईश्वरी खुद कभी लैम्प न जलाता। फिर कुँवर साहब कैसे जलायें ? झुँझला रहा था। समाचार-पत्र आया रखा हुआ था। जी उधर लगा हुआ था; पर लैम्प नदारद। दैवयोग से उसी वक्त मुंशी रियासत अली आ निकले। मैं उन्हीं पर उबल पड़ा, ऐसी फटकार लगायी कि बेचारा उल्लू हो गया— ''तुम लोगों को इतनी फिक्र भी नहीं है, लैम्प तो जलवा दो।'' रियासत अली ने काँपते हुए हाथों से लैम्प जला दिया।

वहाँ एक ठाकुर अकसर आया करता था। कुछ मनचला आदमी था। महात्मा गांधी का परम भक्त। मुझे महात्मा जी का चेला समझकर मेरा बड़ा लिहाज करता था; पर मुझसे कुछ पूछते संकोच करता था। एक दिन मुझे अकेला देखकर आया और हाथ बाँधकर बोला—''सरकार तो गांधी बाबा के चेले हैं न ? लोग कहते हैं कि यहाँ सुराज हो जायेगा तो जमींदार न रहेंगे।''

मैंने शान जमायी— ''जमींदारों के रहने की जरूरत ही क्या है ? ये लोग गरीबों का खून चूसने के सिवा और क्या करते हैं ?''

ठाकुर ने फिर पूछा— ''तो क्या सरकार, सब जमींदारों की जमीन छीन ली जायेगी ?''

मैंने कहा— ''बहुत-से लोग तो खुशी से दे देंगे। जो लोग खुशी से न देंगे उनकी जमीन छीननी ही पड़ेगी। हम लोग तो तैयार बैठे हुए हैं। ज्यों ही स्वराज्य हुआ, अपने सारे इलाके आसामियों के नाम हिबा कर देंगे।''

मैं कुरसी पर पाँव लटकाये बैठा था। ठाकुर मेरे पाँव दबाने लगा। फिर बोला— ''आजकल जमींदार लोग बड़ा जुलम करते है सरकार। हमें भी हुजूर अपने इलाके में थोड़ी-सी जमीन दे दें, तो चलकर वहीं आपकी सेवा में रहें।''

मैंने कहा— ''अभी मेरा कोई अख्तियार नहीं भाई; लेकिन ज्यों ही अख्तियार मिला, मैं सबसे पहले तुम्हें बुलाऊँगा। तुम्हें मोटर ड्राइवरी सिखाकर अपना ड्राइवर बना लूँगा।''

सुना, उस दिन ठाकुर ने खूब भंग पी और अपनी स्त्री को खूब पीटा और गाँव के महाजन से लड़ने पर तैयार हो गया।

छुट्टी इस तरह समाप्त हुई और हम फिर प्रयाग चले। गाँव के बहुत-से लोग हम लोगों को पहुँचाने आये। ठाकुर तो हमारे साथ स्टेशन तक आया। मैंने भी अपना पार्ट खूब सफाई से खेला और अपनी कुबेरोचित विनय और देवत्व की मुहर हरेक हृदय पर लगा दी। जी तो चाहता था, हरेक नौकर को अच्छा इनाम दूँ, लेकिन वह सामर्थ्य कहाँ थी ? वापसी टिकट था ही, केवल गाड़ी में बैठना था; पर गाड़ी आयी तो ठसाठस भरी हुई। दुर्गापूजा की छुट्टियाँ भोगकर सभी लोग लौट रहे थे। सेकंड क्लास में तिल रखने की जगह नहीं। इंटर क्लास की हालत उससे भी बदतर। यही आखिरी गाड़ी थी। किसी तरह रुक न सकते थे। बड़ी मुश्किल से तीसरे दर्जे में जगह मिली। हमारे ऐश्वर्य ने वहाँ अपना रंग जमा लिया, मगर मुझे उसमें बैठना बुरा लग रहा था। आये थे आराम से लेटे-लेटे, जा रहे थे सिकुड़े हुए। पहलू बदलने की भी जगह नहीं थी।

कई आदमी पढ़े-लिखे भी थे। वे आपस में अँगरेजी राज्य की तारीफ करते जा रहे थे। एक महाशय बोले — ''ऐसा न्याय तो किसी राज्य में नहीं देखा। छोटे-बड़े सब बराबर। राजा भी किसी प्रकार अन्याय करें, तो अदालत उनकी भी गर्दन दबा देती है।''

दूसरे सज्जन ने समर्थन किया— ''अरे साहब, आप बादशाह पर दावा कर सकते हैं। अदालत में बादशाह पर डिग्री हो जाती है।''

एक आदमी, जिसकी पीठ पर बड़ा-सा गट्ठर बँधा था, कलकत्ते जा रहा था। कहीं गठरी रखने की जगह न मिलती थी। पीठ पर बाँधे हुए था। इससे बेचैन होकर बार-बार द्वार पर खड़ा हो जाता। मैं द्वार के पास ही बैठा हुआ था। उसका बार-बार आकर मेरे मुँह को अपनी गठरी से रगड़ना मुझे बहुत बुरा लग रहा था। एक तो हवा यों ही कम थी, दूसरे उस गँवार का आकर मेरे मुँह पर खड़ा हो जाना मानो गला दबाना था। मैं कुछ देर तक जब्त किए बैठा रहा। एकाएक मुझे क्रोध आ गया। मैंने उसे पकड़कर पीछे ढकेल दिया और दो तमाचे जोर-जोर से लगाये।

उसने आँख निकालकर कहा— ''क्यों मारते हो बाबू जी ? हमने भी किराया दिया है।''

मैंने उठकर दो-तीन तमाचे और जड़ दिये। गाड़ी मे तूफान आ गया। चारों ओर से मुझ पर बौछार पड़ने लगी :

''अगर इतने नाजुक-मिजाज हो तो अव्वल दर्जे में क्यों नहीं बैठे।''

''कोई बड़ा आदमी होगा तो अपने घर का होगा। मुझे इस तरह मारते, तो दिखा देता।''

''क्या कसूर किया था बेचारे ने ? गाड़ी में साँस लेने की जगह नहीं, खिड़की पर जरा साँस लेने खड़ा हो गया तो उस पर इत्ता क्रोध! अमीर होकर क्या आदमी अपनी इन्सानियत बिल्कुल खो देता है!''

''यह भी अँगरेजी राज है जिसका आप बखान कर रहे थे।''

एक ग्रामीण बोला— ''दपतर माँ घुस तो पावत नाहीं, उस पै इत्ता मिजाज ?''

ईश्वरी ने अँगरेजी में कहा— ''What an idiot you are, Bir !''

और मेरा नशा अब कुछ-कुछ उतरता हुआ मालूम होता था।

मलबे का मालिक

मोहन राकेश

लेखक परिचय :

आधुनिक हिन्दी साहित्य में मोहन राकेश का नाम अत्यंत चर्चित है। इनका जन्म 8 जनवरी सन् 1925 ई० को पंजाब के अमृतसर में हुआ था। इनके पिता एक वकील थे। इन्होंने लाहौर से शास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण किया। इन्होंने हिन्दी एवं संस्कृत में एम.ए. किया। इन्होंने जीविकोपार्जन के लिए अध्यापन का कार्य किया। इन्होंने 'सारिका' पत्रिका का सम्पादन भी किया। कालांतर में सम्पादन कार्य छोड़कर स्वतंत्र लेखन में प्रवृत हुए। इन्हें जीवन भर आर्थिक अभाव से जूझना पड़ा। उपन्यासकार, नाटककार और कहानीकार के रूप में इन्होंने हिन्दी साहित्य की सेवा की।

इनकी प्रमुख कृतियाँ निम्नलिखित हैं — *'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस', 'आधे-अधूरे' उनके बहुचर्चित नाटक हैं। क्वार्टर, पहचान, वारिस इनके कहानी संग्रह हैं। अंधेरे बन्द कमरे, कांपता हुआ दरिया, ना आने वाला कल, नीली रोशनी की बाँहे इनके प्रमुख उपन्यास हैं। परिवेश, इनका निबंध संग्रह है। आखिरी चट्टान तक, इनका यात्रावृत्त है। इसके अतिरिक्त इन्होंने मृच्छकटिकम और शाकुन्तलम का संस्कृत से हिन्दी में अनुवाद भी किया है।*

मोहन राकेश जी नई पीढ़ी के प्रमुख साहित्यकार हैं। इन्होंने आधुनिक परिवेश के साथ जीवन की संवेदनाओं का यथार्थ चित्रण किया है। नयी कहानी को इन्होंने एक नया आयाम दिया है। जयशंकर प्रसाद जी के बाद हिन्दी नाटक में एक नये युग की शुरूआत इनके द्वारा हुई। इन्होंने हिन्दी नाटक को नया शिल्प विधान प्रदान किया। 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक के लिए इन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रदान किया गया।

इनकी मृत्यु 3 जनवरी 1972 को हुई।

साढ़े सात साल के बाद वे लोग लाहौर से अमृतसर आए थे। हॉकी का मैच देखने का तो बहाना ही था, उन्हें ज्यादा चाव उन घरों और बाजारों को फिर से देखने का था जो साढ़े सात साल पहले उनके लिए पराये हो गए थे। हर सड़क पर मुसलमानों की कोई न कोई टोली घूमती नजर आ जाती थी। उनकी आँखे इस आग्रह के साथ वहाँ की हर चीज को देख रही थीं जैसे वह शहर साधारण न होकर एक अच्छा-खासा आकर्षण-केन्द्र हो।

तंग बाजारों में से गुजरते हुए वे एक-दूसरे को पुरानी चीजों की याद दिला रहे थे... देख-फतहदीना, मिसरी बाजार में अब मिसरी की दुकानें पहले से कितनी कम रह गई हैं! उस नुक्कड़ पर सुक्खी भठियारिन की भट्ठी थी, जहाँ अब वह पानवाला बैठा है।... यह नमक मण्डी देख लो, खान साहब! यहाँ की एक-एक ललाइन वह नमकीन होती है कि बस...।

बहुत दिनों के बाद बाजारों में तुर्रेदार पगड़ियाँ और लाल तुरकी टोपियाँ नजर आ रही थीं। लाहौर से आए मुसलमानों में काफी संख्या ऐसे लोगों की थी जिन्हें विभाजन के समय मजबूर होकर अमृतसर से जाना पड़ा था। साढ़े सात साल में आये अनिवार्य परिवर्तनों को देखकर कहीं उनकी आँखों में हैरानी भर जाती और कहीं अफसोस घिर आता–वल्लाह! कटरा जयमलसिंह इतना चौड़ा कैसे हो गया? क्या इस तरफ के सब के सब मकान जल गए थे?... यहाँ हकीम आसिफअली की दुकान थी न? अब यहाँ एक मोची ने कब्जा कर रखा है?

और कहीं–कहीं ऐसे भी वाक्य सुनाई दे जाते—वली, यह मस्जिद ज्यों की त्यों खड़ी है? इन लोगों ने इसका गुरूद्वारा नहीं बना दिया!

जिस रास्ते से भी पाकिस्तानियों की टोली गुजरती, शहर के लोग उत्सुकता पूर्वक उस तरफ देखते रहते। कुछ लोग अब भी मुसलमानों को आते देखकर आशंकित से रास्ते से हट जाते, जबकि दूसरे आगे बढ़कर उनसे बगलगीर होने लगते। ज्यादातर आगन्तुकों से ऐसे सवाल पूछते—कि आजकल लाहौर का क्या हाल है? अनारकली में अब पहले जितनी रौनक होती है या नहीं। सुना है, शाहालमीगेट का बाजार पूरा नया बना है? कृष्णनगर में तो कोई खास तब्दीली नहीं आई? वहाँ का रिश्वतपुरा क्या वाकई रिश्वत के पैसे से बना है?... कहते है पाकिस्तान में अब बुर्का बिल्कुल उड़ गया है, यह ठीक है?... इन सवालों में इतनी आत्मीयता झलकती थी कि लगता था, लाहौर एक शहर नहीं, हजारों लोगों का सगा–सम्बन्धी है, जिसका हाल जानने के लिए वे उत्सुक हैं। लाहौर से आए लोग उस दिन शहर–भर के मेहमान थे जिनसे मिलकर और बातें करके लोगों को बहुत खुशी हो रही थी।

बाजार बांसा अमृतसर का एक उजड़ा–सा बाजार है जहाँ विभाजन से पहले ज्यादातर निचले तबके के मुसलमान रहते थे। वहाँ ज्यादातर बांसों और शहतीरों की ही दुकानें थी जो सबकी सब एक ही आग में जल गई थीं। बाजार बांसा की वह आग अमृतसर की सबसे भयानक आग थी जिससे कुछ देर के लिए तो सारे शहर के जल जाने का अंदेशा पैदा हो गया था। बाजार बांसा के आसपास के कई मुहल्लों को तो उस आग ने अपनी लपेट में ले ही लिया था। खैर, किसी तरह वह आग काबू में आ गई थी, पर उसमें मुसलमानों के एक–एक घर के साथ हिन्दुओं के भी चार–चार छः–छः घर जलकर राख हो गए थे। अब साढ़े सात साल में उनमें से कई इमारतें फिर से खड़ी हो गई थीं, मगर जगह–जगह मलबे के ढेर अब भी मौजूद थे। नई इमारतों के बीच–बीच वे मलबे के ढेर एक अजीब वातावरण प्रस्तुत करते थे।

बाजार बांसा में उस दिन भी चहल–पहल नहीं थी क्योंकि उस बाजार के रहने वाले ज्यादातर लोग तो अपने मकानों के साथ ही शहीद हो गए थे, और जो बचकर चले गए थे, उनमें से शायद किसी में भी लौटकर आने की हिम्मत नहीं रही थी। सिर्फ एक दुबला–पतला बुड्ढा मुसलमान ही उस दिन उस वीरान बाजार में आया और वहाँ की नई और जली हुई इमारतों को देखकर जैसे भूलभुलैया में पड़ गया। बाईं तरफ जानेवाली गली के पास पहुंचकर उसके पैर अन्दर मुड़ने को हुए, मगर फिर वह हिचकिचाकर वहाँ बाहर ही खड़ा रहा गया। जैसे उसे विश्वास नहीं हुआ कि यह वही गली है जिसमें वह जाना चाहता है। गली में एक तरफ कुछ बच्चे कीड़ी–कीड़ा खेल रहे थे और फासले पर स्त्रियाँ ऊँची आवाज में चीखती हुई एक–दूसरी को गालियाँ दे रही थीं।

''सब कुछ बदल गया, मगर बोलियां नहीं बदलीं!'' बुड्ढे मुसलमान ने धीमे स्वर में अपने से कहा और छड़ी का सहारा लिए खड़ा रहा। उसके घुटने पाजामे से बाहर को निकल रहे थे। घुटनों से थोड़ा ऊपर शेरवानी में तीन-चार पैबन्द लगे थे। गली से एक बच्चा रोता हुआ बाहर आ रहा था। उसने उसे पुचकारा, ''इधर आ, बेटे! जा, तुझे चिज्जी देंगे, आ!'' और वह अपनी जेब में हाथ डालकर उसे देने के लिए कोई चीज ढूंढ़ने लगा। बच्चा एक क्षण के लिए चुप कर गया, लेकिन फिर उसी तरह होंठ बिसूरकर रोने लगा। एक सोलह-सत्रह साल की लड़की गली के अन्दर से दौड़ती हुई आई और बच्चे को बांह से पकड़कर गली में ले चली। बच्चा रोने के साथ-साथ अब अपनी बांह छुड़ाने के लिए मचलने लगा। लड़की ने उसे अपनी बांहों में उठाकर साथ सटा लिया और उसका मुँह चूमती हुई बोली, चुप कर, कसम-खाने! रोएगा, तो वह मुसलमान तुझे पकड़कर ले जाएगा! कह रही हूँ चुप कर!''

बुड्ढे मुसलमान ने बच्चे को देने के लिए जो पैसा निकाला था, वह उसने वापस जेब में रख लिया। सिर से टोपी उतारकर वहाँ थोड़ा खुजलाया और टोपी अपनी बगल में दबा ली। उसका गला खुश्क हो रहा था और घुटने थोड़ा कांप रहे थे। उसने गली के बाहर की एक बन्द दुकान के तख्ते का सहारा ले लिया और टोपी फिर से सिर पर लगा ली। गली के सामने जहाँ पहले ऊँचे शहतीर रखे रहते थे वहाँ अब एक तिमंजिला मकान खड़ा था। सामने बिजली के तार पर दो मोटी-मोटी चीलें बिल्कुल जड़-सी बैठी थीं। बिजली के खम्भे के पास थोड़ी धूप थी। वह कई पल धूप में उड़ते जर्रों को देखता रहा। फिर उसके मुंह से निकला, ''या मालिक!''

एक नवयुवक चाबियों का गुच्छा घुमाता गली की तरफ आया। बुड्ढे को वहाँ खड़े देखकर उसने पूछा, ''कहिए मियाँजी, यहाँ किसलिए खड़े हैं?''

बुड्ढे मुसलमान को छाती और बांहो में हल्की-सी कंपकंपी महसूस हुई। उसने होंठों पर जबान फेरी और नवयुवक को ध्यान से देखते हुए कहा, ''बेटे, तेरा नाम मनोरी है न?''

नवयुवक ने चाबियों के गुच्छे को हिलाना बन्द करके अपनी मुट्ठी में ले लिया और कुछ आश्चर्य के साथ पूछा, 'आपको मेरा नाम कैसे मालूम है?''

''साढ़े सात साल पहले तू इतना-सा था,'' कहकर बुड्ढे ने मुसकराने की कोशिश की।

''आप आज पाकिस्तान से आए है?''

''हाँ! पहले हम इसी गली में रहते थे,'' बुड्ढे ने कहा। 'मेरा लड़का चिरागदीन तुम लोगों का दर्जी था। तकसीम से छ: महीने पहले हम लोगों ने यहां अपना नया मकान बनवाया था।''

''ओ, गनी मियां!'' मनोरी ने पहचानकर कहा।

''हाँ, बेटे, मैं तुम लोगों का गनी मियां हूँ। चिराग और उसके बीवी-बच्चे तो अब मुझे मिल नहीं सकते, मगर मैंने सोचा कि एकबार मकान की ही सूरत देख लूँ।'' बुड्ढे ने टोपी उतारकर सिर पर हाथ फेरा, और आपने आंसुओं को बहने से रोक लिया।

''तुम तो शायद काफी पहले यहाँ से चले गए थे,'' मनोरी के स्वर में संवेदना भर आई।

''हाँ, बेटे यह मेरी बदबख्ती थी कि मैं अकेला पहले निकलकर चला गया था। यहाँ रहता, तो उसके साथ मैं भी...'' कहते हुए उसे एहसास हो आया कि यह बात उसे नहीं कहनी चाहिए। उसने बात को मुँह में रोक लिया पर आँखों में आए आँसुओं को नीचे बह जाने दिया।

‘‘छोड़ो गनी मियाँ, अब उन बातों को सोचने में क्या रखा है?’’ मनोरी ने गनी की बाँह अपने हाथ में ली। ‘‘चलो, तुम्हें तुम्हारा घर दिखा दूँ।’’

गली में खबर इस तरह फैली थी कि गली के बाहर एक मुसलमान खड़ा है जो रामदासी के लड़के को उठाने जा रहा था... उसकी बहन वक्त पर उसे पकड़ लाई, नहीं तो वह मुसलमान उसे ले गया होता। यह खबर मिलते ही जो स्त्रियाँ गली में पीढ़े बिछाकर बैठी थीं, वे पीढ़े उठाकर घरों के अन्दर चली गईं। गली में खेलते बच्चों को भी उन्होंने पुकार-पुकारकर घरों के अन्दर बुला लिया। मनोरी गनी को लेकर गली में दाखिल हुआ, तो गली में सिर्फ एक फेरीवाला रह गया था, या रक्खा पहलवान जो कुएँ पर उगे पीपल के नीचे बिखरकर सोया था। हाँ, घरों की खिड़कियों में से और किवाड़ों के पीछे से कई चेहरे गली में झांक रहे थे। मनोरी के साथ गनी को आते देखकर उनमें हल्की चेहमेगोइयां शुरू हो गईं। दाढ़ी के सब बाल सफेद हो जाने के बावजूद चिरागदीन के बाप अब्दुल गनी को पहचानने में लोगों को दिक्कत नहीं हुई।

‘‘वह था तुम्हारा मकान,’’ मनोरी ने दूर से एक मलबे की तरफ इशारा किया। गनी पल-भर ठिठककर फटी-फटी आँखों से उस तरफ देखता रहा। चिराग और उसके बीवी-बच्चों की मौत को वह काफी पहले स्वीकार कर चुका था। मगर अपने नये मकान को इस शक्ल में देखकर उसे जो झुरझुरी हुई, उसके लिए वह तैयार नहीं था। उसकी जबान पहले से और खुश्क हो गई और घुटने भी ज्यादा काँपने लगे।

‘‘यह मलबा?’’ उसने अविश्वास के साथ पूछ लिया।

मनोरी ने उसके चेहरे के बदले हुए रंग को देखा। उसकी बांह को थोड़ा और सहारा देकर जड़-से स्वर में उत्तर दिया, ‘तुम्हारा मकान उन्हीं दिनों जल गया था।’

गनी छड़ी के सहारे चलता हुआ किसी तरह मलबे के पास पहुँच गया। मलबे में अब मिट्टी ही मिट्टी थी जिसमें से जहाँ-तहाँ टूटी और जली हुई ईंटें बाहर झांक रही थीं। लोहे और लकड़ी का सामान उसमें से कब का निकाला जा चुका था। केवल एक जले हुए दरवाजे का चौखट न जाने कैसे बचा रह गया था। पीछे की तरफ दो जली हुई अलमारियां थीं जिनकी कालिख पर अब सफेदी की हल्की-हल्की तह उभर आई थी। उस मलबे को पास से देखकर गनी ने कहा, ‘‘यह बाकी रह गया है, यह?’’ और उसके घुटने जैसे जवाब दे गए और वह वहीं जले हुए चौखट को पकड़कर बैठ गया। क्षण-भर बाद उसका सिर भी चौखट से जा सटा और उसके मुँह से बिलखने की-सी आवाज निकाली, ‘‘हाय ओए चिरागदीना!’’

जले हुए किवाड़ का वह चौखट मलबे में से सिर निकाले साढ़े सात साल खड़ा तो रहा था, पर उसकी लकड़ी बुरी तरह भुरभुरा गई थी। गनी के सिर के छूने से उसके कई रेशे झड़कर आसपास बिखर गए। कुछ रेशे गनी की टोपी और बालों पर आ रहे। उन रेशों के साथ एक केंचुआ भी नीचे गिरा जो गनी के पैर से छः-आठ इंच दूर नाली के साथ-साथ बनी ईंटों की पटरी पर इधर-उधर सरसराने लगा। वह छिपने के लिए सूराख ढूंढ़ता हुआ जरा-सा सिर उठाता, पर कोई जगह न पाकर दो-एक बार सिर फटकने के बाद दूसरी तरफ मुड़ जाता।

खिड़कियों से झांकनेवाले चेहरों की संख्या अब पहले से कहीं ज्यादा हो गई थी। उनमें चेहमेगोइयां चल रही थीं कि आज कुछ जरूर होगा...चिरागदीन का बाप गनी आ गया है, इसलिए साढ़े सात साल पहले की वह सारी घटना आज अपने-आप खुल जाएगी। लोगों को लग रहा था जैसे वह मलबा ही गनी को सारी

कहानी सुना देगा–कि शाम के वक्त चिराग ऊपर के कमरे में खाना खा रहा था जब रक्खे पहलवान ने उसे नीचे बुलाया–कहा कि वह एक मिनट आकर उसकी बात सुन ले। पहलवान उन दिनों गली का बादशाह था। वहाँ के हिन्दुओं पर ही उसका काफी दबदबा था–चिराग तो खैर मुसलमान था। चिराग हाथ का कौर बीच में ही छोड़कर नीचे उतर आया। उसकी बीवी जुबैदा और दोनों लड़कियां, किश्वर और सुलताना, खिड़कियों से नीचे झाँकने लगीं। चिराग ने ड्योढ़ी से बाहर कदम रखा ही था कि पहलवान ने उसे कमीज के कॉलर से पकड़कर अपनी तरफ खींच लिया और गली में गिराकर उसकी छाती पर चढ़ बैठा। चिराग उसका छुरेवाला हाथ पकड़कर चिल्लाया, ''रक्खे पहलवान, मुझे मत मार! हाय, कोई मुझे बचाओ!'' ऊपर से जुबैदा, किश्वर और सुलताना भी हताश स्वर में चिल्लाती और चीखती हुई नीचे ड्योढ़ी की तरफ दौड़ीं। रक्खे के एक शागिर्द ने चिराग की जद्दोजेहद करती बांहें पकड़ लीं और रक्खा उसकी जांघों को अपने घुटनों से दबाए हुए बोला, ''चीखता क्यों हे, भैण के...तुझे मैं पाकिस्तान दे रहा हूँ, ले पाकिस्तान!'' और जब तक जुबैदा, किश्वर और सुलताना नीचे पहुँचीं, चिराग को पाकिस्तान मिल चुका था।

आसपास के घरों की खिड़कियां तब बंद हो गई थीं। जो लोग इस दृश्य के साक्षी थे, उन्होंने दरवाजे बंद करके अपने को इस घटना के उत्तरदायित्व से मुक्त कर लिया था। बंद किवाड़ों में भी उन्हें देर तक जुबैदा, किश्वर और सुलताना के चीखने की आवाजें सुनाई देती रहीं। रक्खे पहलवान और उसके साथियों ने उन्हें भी उसी रात पाकिस्तान दे दिया, मगर दूसरे तबील रास्ते से। उनकी लाशें चिराग के घर में न मिलकर बाद में नहर के पानी में पाई गईं।

दो दिन चिराग के घर की छानबीन होती रही थी। जब उसका सारा सामान लूटा जा चुका, तो न जाने किसने उस घर को आग लगा दी थी। रक्खे पहलवान ने तब कसम खाई थी कि वह आग लगाने वाले को जिंदा जमीन में गाड़ देगा क्योंकि उस मकान पर नजर रखकर ही उसने चिराग को मारने का निश्चय किया था। उसने उस मकान को शुद्ध करने के लिए हवन–सामग्री भी ला रखी थी। मगर आग लगाने वाले का तब से आज तक पता नहीं चल सका था। अब साढ़े सात साल से रक्खा उस मलबे को अपनी जायदाद समझता आ रहा था, जहाँ न वह किसी को गाय–भैंस बांधने देता था और न ही खुमचा लगाने देता था। उस मलबे से बिना उसकी इजाजत के कोई एक ईंट भी नहीं निकाल सकता था।

लोग आशा कर रहे थे यह सारी कहानी जरूर किसी न किसी तरह गनी तक पहुँच जाएगी...जैसे मलबे को देखकर ही उसे सारी घटना का पता चल जाएगा। और गनी मलबे की मिट्टी को नाखूनों से खोद खोदकर अपने ऊपर डाल रहा था और दरवाजे के चौखट को बांह में लिए हुए रो रहा था, ''बोल, चिरागदीना, बोल! तू कहाँ चला गया, ओए? ओ किश्वर! ओ सुलताना! हाय, मेरे बच्चे ओएऽऽ! गनी को पीछे क्यों छोड़ दिया, ओएऽऽ!''

और भुरभुरे किवाड़ से लकड़ी के रेशे झड़ते जा रहे थे।

पीपल के नीचे सोए रक्खे पहलवान को जाने किसी ने जगा दिया, या वह खुद ही जाग गया। यह जानकर कि पाकिस्तान से अब्दुल गनी आया है और मकान के मलबे पर बैठा है, उसके गले में थोड़ा झाग उठ आया जिससे उसे खांसी आ गई और उसने कुएं के फर्श पर थूक दिया। मलबे की तरफ देखकर उसकी छाती से धौकनी की–सी आवाज निकली और उसका निचला होंठ थोड़ा बाहर को फैल आया।

''गनी अपने मलबे पर बैठा है?'' उसके शागिर्द लच्छे पहलवान ने उसके पास आकर बैठते हुए कहा।

'मलबा उसका कैसे है? मलबा हमारा है!'' पहलवान ने झाग से घरघराई आवाज में कहा।

''मगर वह वहाँ बैठा है,'' लच्छे ने आँखों में एक रहस्यमय संकेत लाकर कहा।

''बैठा है, बैठा रहे। तू चिलम ला!'' रक्खे की टांगें थोड़ी फैल गईं और उसने अपनी नंगी जांघों पर हाथ फेर लिया।

''मनोरी ने अगर उसे कुछ बता दिया तो... ?'' लच्छे ने चिलम भरने के लिए उठते हुए उसी रहस्यपूर्ण ढंग से कहा।

''मनोरी की क्या शामत आई है?''

लच्छा चला गया।

कुएं पर पीपल की कई पुरानी पत्तियां बिखरी थीं। रक्खा उन पत्तियों को उठा-उठाकर अपने हाथों में मसलता रहा। जब लच्छे ने चिलम के नीचे कपड़ा लगाकर चिलम उसके हाथ में दी, तो उसने कश खींचते हुए पूछा, ''और तो किसी से गनी की बात नहीं हुई?''

''नहीं।''

''ले,'' और उसने खांसते हुए चिलम लच्छे के हाथ में दे दी। मनोरी गनी की बांह पकड़े मलबे की तरफ से आ रहा था। लच्छा उकडूं होकर चिलम के लम्बे-लम्बे कश खींचने लगा। उसकी आँखें आधा क्षण रक्खे के चेहरे पर टिकतीं और आधा क्षण गनी की तरफ लगी रहतीं।

मनोरी गनी की बांह थामे उससे एक कदम आगे चल रहा था — जैसे उसकी कोशिश हो कि गनी कुएं के पास से बिना रक्खे को देखे ही निकल जाए। मगर रक्खा जिस तरह बिखरकर बैठा था, उससे गनी ने उसे दूर से ही देख लिया। कुएं के पास पहुँचते न पहुँचते उसकी दोनों बांहें फैल गईं और उसने कहा, ''रक्खे पहलवान!''

रक्खे ने गरदन उठाकर और आंखें जरा छोटी करके उसे देखा। उसके गले में अस्पष्ट -सी घरघराहट हुई, पर वह बोला नहीं।

''रक्खे पहलवान, मुझे पहचाना नहीं?'' गनी ने बांहें नीची करके कहा। ''मै गनी हूँ, अब्दुल गनी, चिरागदीन का बाप!''

पहलवान ने ऊपर से नीचे तक उसका जायजा लिया। अब्दुल गनी की आंखों में उसे देखकर एक चमक-सी आ गई थी। सफेद दाढ़ी के नीचे चेहरे की झुर्रियाँ भी कुछ फैल गई थीं। रक्खे का निचला होंठ फड़का। फिर उसकी छाती से भारी-सा स्वर निकला, ''सुना, गनिया!''

गनी की बांहें फिर फैलने को हुईं, पर पहलवान पर कोई प्रतिक्रिया न देखकर उसी तरह रह गईं। वह पीपल का सहारा लेकर कुएं की सिल पर बैठ गया।

ऊपर खिड़कियों में चेहमेगोइयां तेज हो गईं कि अब दोनों आमने-सामने आ गए हैं, तो बात जरूर खुलेगी ..... फिर हो सकता है दोनों में गाली-गलौज भी हो। ..... अब रक्खा गनी को हाथ नहीं लगा सकता। अब वे दिन नहीं रहे .... बड़ा मलबे का मालिक बनता था! ..... असल में मलबा न इसका है, न गनी का। मलबा तो सरकार की मलकियत है! मरदूद किसी को वहां गाय का खूंटा तक नहीं लगाने देता! ....

मनोरी के बीवी – बच्चों को मारा है! ..... रक्खा आदमी नहीं सांड है! दिन–भर सांड की तरह गली में घूमता है! .... गनी बेचारा कितना दुबला हो गया है! दाढ़ी के सारे बाल सफेद हो गए हैं! ...

गनी ने कुएं की सिल पर बैठकर कहा, ''देख रक्खे पहलवान, क्या से क्या हो गया है। भरा–पूरा घर छोड़कर गया था और आज यहाँ यह मिट्टी देखने आया हूँ। बसे घर की आज यहीं निशानी रह गई है! तू सच पूछे, तो मेरा यह मिट्टी भी छोड़कर जाने को मन नहीं करता!'' और उसकी आँखें फिर छलछला आईं।

पहलवान ने अपनी टांगें समेट लीं और अंगोछा कुएं की मुंडेर से उठाकर कंधे पर डाल लिया। लच्छे ने चिलम उसकी तरफ बढ़ा दी। वह कश खींचने लगा।

''तू बता, रक्खे, यह सब हुआ किस तरह?'' गनी किसी तरह अपने आंसू रोक–कर बोला!'' तुम लोग उसके पास थे। सब में भाई–भाई की–सी मुहब्बत थी। अगर वह चाहता, तो तुम में से किसी के घर में नहीं छिप सकता था? उसमें इतनी सी समझदारी नहीं थी?''

''ऐसे ही है,'' रक्खे को स्वयं लगा कि उसकी आवाज में एक अस्वाभाविक–सी गूंज है। उसके होंठ गाढ़े लार से चिपक गए थे। मूंछों के नीचे से पसीना उसके होंठ पर आ रहा था। माथे पर किसी चीज का दबाव महसूस हो रहा था उसकी रीढ़ की हड्डी सहारा चाह रही थी।

''पाकिस्तान में तुम लोगों का क्या हाल है?'' उसने पूछा। उसके गले की नसों में एक तनाव आ गया था। उसने अंगोछे से बगलों का पसीना पोंछा और गले का झाग मुँह में खींचकर गली में थूक दिया।

''क्या हाल बताऊँ, रक्खे,'' गनी दोनों हाथों से छड़ी पर बोझ डालकर झुकता हुआ बोला।''मेरा हाल तो मेरा खुदा ही जानता है। चिराग वहां साथ होता, तो और बात थी। ...... मैंने उसे कितना समझाया था कि मेरे साथ चला चल। पर वह जिद पर अड़ा रहा कि नया मकान छोड़कर नहीं जाऊँगा — यह अपनी गली है, यहाँ कोई खतरा नहीं है। भोले कबूतर ने यह नहीं सोचा कि गली में खतरा न हो, बाहर से तो खतरा आ सकता है! मकान की रखवाली के लिए चारों ने अपनी जान दे दी! ...... रक्खे, उसे तेरा बहुत भरोसा था। कहता था कि रक्खे के रहते मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। मगर जब जान पर बन आईं, तो रक्खे के रोके भी न रुकी।''

रक्खे ने सीधा होने की चेष्टा की क्योंकि उसकी रीढ़ की हड्डी बहुत दर्द कर रही थी। अपनी कमर और जांघों के जोड़ पर उसे सख्त दबाव महसूस हो रहा था। पेट की अंतड़ियों के पास से जैसे कोई चीज उसकी सांस को रोक रही थी। उसका सारा जिस्म पसीने से भीग गया था और उसके तलुओं में चुनचुनाहट हो रही थी। बीच–बीच में नीली फुलझड़ियां–सी ऊपर से उतरती और तैरती हुई उसकी आँखों के सामने से निकल जातीं। उसे अपनी जबान और होंठों के बीच एक फासला–सा महसूस हो रहा था। उसने अगोछे से होंठों के कोनों को साफ किया। साथ ही उसके मुँह से निकला, ''हे प्रभु, तू ही है, तू ही है, तू ही है!''

गनी ने देखा कि पहलवान के होंठ सूख रहे हैं और उसकी आँखों के इर्द–गिर्द दायरे गहरे हो गए हैं। वह उसके कंधे पर हाथ रखकर बोला, ''जो होना था, हो गया रक्खिआ! उसे अब कोई लौटा थोड़े ही सकता है! खुदा नेक की नेकी बनाए रखे और बद की बदी माफ करे! मैंने आकर तुम लोगों को देख लिया, सो समझूंगा कि चिराग को देख लिया। अल्लाह तुम्हें सेहतमंद रखे। और वह छड़ी के सहारे उठ खड़ा हुआ। चलते हुए उसने कहा, ''अच्छा रक्खे, पहलवान!

रक्खे से गले से मद्धिम–सी आवाज निकली। अंगोछा लिए हुए उसके दोनों हाथ जुड़ गए। गनी हसरत–भरी नजर से आसपास देखता हुआ धीरे–धीरे गली से बाहर चला गया।

ऊपर खिड़कियों में थोड़ी देर चेहमेगोइयां चलती रहीं — कि मनोरी ने गली से बाहर निकलकर जरूर गनी को सब कुछ बता दिया होगा कि गनी के सामने रक्खे का तालू कैसे खुश्क हो गया था! ..... रक्खा अब किस मुँह से लोगों को .... मलबे पर गाय बाँधने से रोकेगा? बेचारी जुबैदा! कितनी अच्छी थी वह! रक्खे मरदूद का घर ...... न घाट, इसे किसी की मां-बहन का लिहाज था?

थोड़ी देर में स्त्रियाँ घरों से गली में उतर आईं। बच्चे गली में गुल्ली-डण्डा खेलने लगे। दो बारह-तेरह साल की लड़कियाँ किसी बात पर एक-दूसरी से गुत्थम-गुत्था हो गईं।

रक्खा गहरी शाम तक कुएँ पर बैठा खंखारता और चिलम फूँकता रहा। कई लोगों ने वहाँ गुजरते हुए उससे पूछा "रक्खे शाह, सुना है आज गनी पाकिस्तान से आया था?"

"हाँ, आया था," रक्खे ने हर बार एक ही उत्तर दिया।

"फिर?"

"फिर कुछ नहीं। चला गया।"

रात होने पर रक्खा रोज की तरह गली के बाहर बाईं तरफ की दुकान के तख्ते पर आ बैठा। रोज वह रास्ते से गुजरने वाले परिचित लोगों को आवाज दे-देकर पास बुला लेता था और उन्हें सट्टे के गुर और सेहत के नुस्खे बताता रहता था। मगर उस दिन वह वहाँ बैठा लच्छे को अपनी वैष्णों देवी की उस यात्रा का वर्णन सुनाता रहा जो उसने पंद्रह साल पहले की थी। लच्छे को भेजकर वह गली में आया, तो मलबे के पास लोकू पण्डित की भैंस को देखकर वह आदत के मुताबिक उसे धक्के दे-देकर हटाने लगा— "तत-तत.त....तत-तत....!"

भैंस को हटाकर वह सुस्ताने के लिए मलबे के चौखट पर बैठ गया। गली उस समय सुनसान थी। कमेटी की बत्ती न होने से वहाँ शाम से ही अंधेरा हो जाता था। मलबे के नीचे नाली का पानी हल्की आवाज करता बह रहा था। रात की खमोशी को काटती हुई कई तरह की हल्की-हल्की आवाजें मलबे की मिट्टी में से सुनाई दे रही थीं..... च्यु-च्यु-च्यु.....चिक्-चिक्-चिक्....किर्र्र्र्.....र्र्र्र्-रीरीरीरी-चिर्र्र्र्...... । एक भटका हुआ कौआ न जाने कहां से उड़कर उस चौखट पर आ बैठा। इससे लकड़ी के कई रेशे इधर-उधर छितरा गए। कौए के वहां बैठते न बैठते मलबे के एक कोने में लेटा हुआ कुत्ता गुर्राकर उठा और जोर-जोर से भौंकने लगा वऊ-अउ-वउ.... ।

कौआ कुछ देर सहमा सा चौखट पर बैठा रहा, फिर पंख फड़फड़ाता कुएँ के पीपल पर चला गया। कौए के उड़ जाने पर कुत्ता और नीचे उतर आया और पहलवान की तरफ मुँह करके भौंकने लगा। पहलवान उसे हटाने के लिए भारी आवाज में बोला "दुर् दुर् दुर् दुर्! मगर कुत्ता और पास आकर भौंकने लगा—वऊ-अऊ-वऊ-वऊ-वऊ-वऊ।"

पहलवान ने एक ढेला उठाकर कुत्ते की तरफ फेंका। कुत्ता थोड़ा पीछे हट गया, पर उसका भौंकना बंद नहीं हुआ। पहलवान कुत्ते को मां की गाली देकर वहाँ से उठ खड़ा हुआ और धीरे-धीरे आकर कुएँ की सिल पर लेट गया। उसके वहाँ से हटते ही कुत्ता गली में उतर आया और कुएँ की तरफ मुँह करके भौंकने लगा। काफी देर भौंकने के बाद जब उसे गली में कोई प्राणी चलता-फिरता नजर नहीं आया, तो वह एक बार कान झटककर मलबे पर लौट गया और वहाँ कोने में बैठकर गुर्राने लगा।

काव्य

कबीर के पद

कबीरदास

कवि परिचय :

संत काव्यधारा के प्रवर्तक एवं निर्गुण भक्ति के सर्वश्रेष्ठ भक्त कवि कबीरदास का जन्म काशी में सन् 1398 ई० में हुआ था। कबीर दास के जन्म-समय के विषय में विद्वानों की भिन्न भिन्न राय है। यह माना जाता है कि कबीरदास एक विधवा ब्राह्मणी की संतान थे जिसने लोक लाज के भय से उन्हें लहरतारा में एक तालाब के निकट छोड़ दिया था। इन्हें नीरू और नीमा नामक नि:सन्तान जुलाहा दम्पत्ति ने प्राप्त किया और इनकी परवरिश की। कबीरदास के गुरु स्वामी रामानंद थे। जनश्रुति के अनुसार इनका विवाह लोई नामक स्त्री से हुआ था। इनकी दो सन्तानें थीं — पुत्र कमाल और पुत्री कमाली। कबीरदास ने जुलाहा का पुश्तैनी धंधा ही परिवार के भरण-पोषण के लिए अपनाया।

कबीर दास पढ़े-लिखे नहीं थे। उन्होंने अपने जीवन के अनुभवों की कसौटी पर जिसे सही समझा उसे बेखौफ प्रकट किया। कबीरदास भाग्यवाद के प्रबल विरोधी थे। काशी में शरीर त्याग करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है, इस मान्यता को झुठलाने के लिए अपने जीवन के अंतिम समय में वह काशी छोड़कर मगहर चले गए। कबीरदास रूढ़िवादिता, धार्मिक आडम्बर, अंधविश्वास, जाति-पाँति के भेद-भाव, मूर्ति-पूजा आदि के घोर विरोधी थे। कबीरदास के उपदेशों को उनके शिष्य धर्मदास ने 'बीजक' नाम से संग्रहित किया। बीजक के तीन भाग हैं — 'साखी', सबद और रमैनी। कबीरदास की मृत्यु के संबंध में भी विद्वानों में मतैक्य नहीं है। उनकी मृत्यु सन् 1518 ई० में मानी जाती है।

(क) कबीर की साखी

(1) ग्यान प्रकास्या गुरु मिल्या, सों जिनि बीसरिं जाइ।
जब गोविन्द कृपा करी, तब गुरु मिलिया आई।।

(2) ना गुरु मिल्या न सिष भया, लालच खेल्या डाव।
दून्यू बूड़े धार मैं चढ़ि पाथर की नाव।

(3) जाका गुरू भी अंधला चेला खरा निरंध।
अंधै अंधा ठेलिया, दून्यू कूप पड़ंत।।

(4) कबीर संगति साधु की, कदे न निरफल होइ।
चंदन होसी बाँवना, नीम न कहसी कोई।।

(5) जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नांहि।
प्रेम गली अति साँकरी, जामे में दो न समाँहि।।

(6) निन्दक नियरे राखिए, आँगन कुटी छवाय।
बिनु पानी साबुन बिना, निर्मल करै सुभाय।।

(7) हेरत-हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ।
बूँद समांनी समुंद में, सो कत हेरी जाइ।।

(8) जल में कुंभ, कुंभ में जल है, बाहिर भीतर पानी।
फूटा कुंभ, जल जलहिं समाना, यह तत कथौ गियानी।।

(9) कांकर पाथर जोरि कै मसजिद लई बनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दै क्या बहरा हुआ खुदाय।।

(10) हम देखत जग जात है, जग देखत हम जाहिं।
ऐसा कोई नां मिलै, पकड़ि छुड़ावै बांहिं।।

(ख) कबीर के पद

(1) माया महा ठगिनि हम जाँनी!
तिरगुन फाँसि लिये कर डोलै, बोलै मधुरी बानी!
केसव के कँवला होइ बैठी सिव कै भवन भवाँनी!
पंडा के मूरत होइ बैठी तीरथहू में पाँनी!
जोगी के जोगिन होइ बैठी राजा कै घर राँनी!
काहू के हीरा होइ बैठी, काहू के कौड़ी काँनी!
भक्ताँ के भक्तिन होइ बैठी, तुरकाँ कै तुरकाँनी
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, यह सब अकथ कहानी!!

(2) झूठे तन कौं क्या गरबावै। मरै तो पल भरि रहन न पावै।
खीर खाँड घृत पिंड संवारा। प्रान गएँ लै बाहरि जारा।
जिंहिं सिरि रचि रचि बाँधत पागा। सो सिरू चंचु संवारहि कागा।
हाड़ जरै जैसे लकड़ी झूरी। केस जरै जैसे त्रिन कै कूरी।
कहै कबीर नर अजहुँ न जागै। जम का डंड मूड़ महिं लागै।

तुलसीदास के पद

तुलसीदास

कवि परिचय :

गोस्वामी तुलसीदास का जन्म संवत 1589 वि. (सन् 1532 ई०) में बाँदा जिले के राजापुर नामक ग्राम में हुआ था। यह सरयूपारी ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम आत्मा राम दूबे और माता का नाम हुलसी था। अभुक्त भूल नक्षत्र में पैदा होने के कारण इन्हें इनके माता-पिता ने त्याग किया। इनका बचपन का नाम रामबोला था। इनका पालन-पोषण मुनिया नामक दासी ने किया। तुलसीदास का प्रारंभिक जीवन अत्यंत कष्ट में बीता। मुनिया दासी की मृत्यु के बाद तुलसीदास दर-दर भटकते रहे। इनकी मुलाकात स्वामी नरहरिदास से हुई। जिन्होंने इन्हें राम कथा का अध्ययन कराया। तुलसीदास काशी में आकर धर्मशास्त्रों का अध्ययन करने लगे। इनका विवाह दीनबन्धु पाठक की सुपुत्री रत्नावली से हुआ था। तुलसीदास जी रत्नावली से अतिशय प्रेम करते थे। एक दिन रत्नावली इन्हें बिना बताए पीहर चली गयी। तुलसीदास रात्रि में ही नदी-नाले पार करके रत्नावली के पास जा पहुँचे। तुलसीदास को इस तरह से आने के लिए रत्नावली ने धिक्कारा और कहा —

अस्थि चर्ममय देहमम, ता में ऐसी प्रीति।
ऐसी हो श्रीराम में, होत न तो भवभीति।।

रत्नावली की बातों से तुलसीदास अत्यन्त मर्माहत हुए और वापस लौट आए। वह काशी जाकर सन्यासी हो गए, और जीवन पर्यंत रामकथा और सत्संग में ही लगे रहे। तुलसीदास ने राम को अपना आराध्य मान लिया और राम भक्ति में ही लीन हो गए। तुलसीदास संस्कृत के महापंडित थे।

*तुलसीदास का काव्य ईश्वर-भक्ति, समाज सुधार और मानवता के उच्चतम आदर्श से अनुप्राणित है। तुलसीदास के काव्य का मुख्य लक्ष्य लोक मंगल है। तुलसीदास की ईश्वर-भक्ति विनय, श्रद्धा एवं करूणा भावना से परिपूर्ण है। **उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं** — 'रामचरित मानस', 'विनय-पत्रिका', 'कवितावली', 'गीतावली', 'दोहावली', वैराग्य संदीपनी', 'रामलला नहछू', 'पार्वती-मंगल', 'जानकी मंगल', 'बरवै रामायण' इत्यादि।*

तुलसीदास की मृत्यु सं० 1680 वि. (सन् 1623 ई०) में मानी जाती है।

(क) जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहिं बिलोकत पातक भारी।।
निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्र क दुख रज मेरू समाना।। ।। 1 ।।

जिन्हके असिमति सहज ना आई। ते सठ कत हठि करत मिताई।।
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटै अवगुनहिं दुरावा।। ।।2।।

देत लेत मन संक न धरई। बल अनुमान सदा हित करई।।
बिपतिकाल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा।। ।।3।।

आगें कह मृदु बचन बनाई। पाछे अनहित मन कुटिलाई।।
जाकर चित अहिगति सम भाई। अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई।। ।।4।।

सेवक सठ नृप कृपन कुनारी। कपटी मित्र सूल सम चारी।।
सखा सोच त्यागहु बल मोरें। सब विधि घटब काज मैं तोरे।। ।।5।।

(किष्किंधा कांड – रामचरितमानस)

(ख) जल को गए लक्खनु हैं लरिका, परिखौ पिय, छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े।
पोंछि पसेउ बयारि करौं, अरू पाँय पखारिहौं भूभुरि–डाढ़े।।

'तुलसी' रघुवीर प्रिया श्रम जानि कै, बैठे बिलंब लौं कंटक काढ़े।
जानकी नाह को नेहु लख्यौ, पुलक्यो तनु, बारि विलोचन बाढ़े।।

(कवितावली)

(ग) मन पछितैहैं अवसर बीते।
दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु, करम, बचन अरू ही ते।।

सहसबाहु दसबदन आदि नृप, बचे न काल बली ते।
हम–हम करि धन–धाम सँवारे, अन्त चले उठि रीते।।

सुत–बनितादि जानि स्वारथ रत, न करू नेह सबहीं ते।
अन्तहुँ तोहि तजैंगे पामर! तू न तजै अबहीं ते।।

अब नाथहिं अनुरागु, जागु जड़ त्यागु दुरासा जी ते।
बुझै न काम–अगिनि तुलसी कहुँ, विषय–भोग बहु घी ते।।

(विनय–पत्रिका)

सन्ध्या सुंदरी

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

कवि परिचय :

महाप्राण सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' जी का जन्म सन् 1896 ई० में पश्चिम बंगाल के मेदिनीपुर जिले के 'महिषा दल' में हुआ था। इनके पिता रामसहायक त्रिपाठी महिषा दल के रियासत में नौकरी करते थे। निराला जी की शिक्षा-दीक्षा मैट्रिक तक ही हुई। बाल्यावस्था में ही इनकी माता जी का देहान्त हो गया था। १५ वर्षों की अल्प आयु में ही इनका विवाह मनोरमा देवी से हुआ। इन्हें पिता की मृत्यु का आघात अल्प आयु में ही सहना पड़ा। निराला जी साहित्य एवं संगीत की ओर उन्मुख हुए। निराला जी को पत्नी की मृत्यु का दारूण आघात भी सहना पड़ा जिससे वह भीतर ही भीतर टूट गये। निराला जी रामकृष्ण मिशन के अद्वैत आश्रम में गए। साहित्य सृजन में लगे रहे और वहाँ आश्रम के पत्र 'समन्वय' का संपादन किया। उन्होंने कलकत्ता से प्रकाशित 'मतवाला' पत्रिका का संपादन भी किया। बाद में निराला जी बंगाल छोड़कर लखनऊ आ गए। फिर वह इलाहाबाद में रहने लगे। पुत्री सरोज की भी मृत्यु ने इनके अन्तर मन को झकझोर कर रख दिया।

निराला जी की प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं — *'अनामिका', 'परिमल', 'गीतिका', 'अपरा', 'तुलसीदास', 'कुकुरमुत्ता', 'अणिमा', 'बेला', 'नये पत्ते', 'आराधना', 'अर्चना', आदि प्रमुख काव्य-संग्रह हैं। 'राम की शक्ति-पूजा', 'सरोज-स्मृति', 'बादल-राग' उनकी चर्चित लम्बी कविताएँ हैं। निराला जी ने प्रचुर गद्य साहित्य भी लिखा है। उन्होंने विवेकानन्द जी और रवीन्द्रनाथ टैगोर जी की कुछ कविताओं का अनुवाद भी किया।*

निराला जी की काव्य यात्रा छायावाद युग से लेकर प्रगतिवादी युग तक अनवरत चलती रही। वह व्यक्तित्व एवं कृतित्व दोनों रूपों में निराले थे। छायावादी कवि के रूप में निराला जी ने जहाँ प्रेम और सौन्दर्य, प्रकृति चित्रण, रहस्यवाद और आत्माभिव्यक्ति के मनमोहक चित्र प्रस्तुत किए, वहीं दूसरी ओर प्रगतिवादी कवि के रूप में उन्होंने समाज के पीड़ित, दुःखी एवं शोषित वर्ग की दयनीय अवस्था के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की और समाज व्यवस्था के खिलाफ तीखी और ओजपूर्ण आवाज भी उठाई। कुकुरमुत्ता, तोड़ती पत्थर आदि उनकी प्रसिद्ध प्रगतिवादी रचनाएँ हैं।

निराला जी की मृत्यु सन् 1961 ई० में हुई।

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सन्ध्या-सुन्दरी परी-सी
धीरे-धीरे धीरे।

तिमिरांचल में चंचलता का नहीं कहीं आभास,
मधुर-मधुर है दोनों उसके अधर -
किन्तु जरा गंभीर नहीं है उनमें हास-विलास।
हँसता है तो केवल तारा एक
गुँथा हुआ उन घुँघराले काले-काले बालों से,
हृदय राज्य की रानी का वह करता है अभिषेक।
अलसता की-सी लता
किन्तु कोमलता की वह कली,
सखी नीरवता के कन्धे पर डाले बाँह,
छाँह-सी अम्बर-पथ से चली।

नहीं बजती उसके हाथों में कोई वीणा,
नहीं होता कोई अनुराग-राग-आलाप,
नूपुरों में भी रून-झुन, रून-झुन नहीं,
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द - सा चुप, चुप-चुप,
है गूँज रहा सब कहीं-

व्योम मण्डल में - जगतीतल में -
सोती शान्त सरोवर पर उस अमल कमलिनी-दल-में -
सौंदर्य गर्विता सरिता के अति विस्तृत वक्ष:स्थल में -
धीर वीर गम्भीर शिखर पर हिमगिरि - अटल-अचल में -
उत्ताल तरंगाघात-प्रलय-घन-गर्जन-जलधि-प्रबल में -
क्षिति में - जल में - नभ में - अनिल - अनल में -
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द-सा 'चुप, चुप-चुप'

है गूँज रहा सब कहीं -
और क्या है ? कुछ नहीं ?

मदिरा की वह नदी बहाती आती,
थके हुए जीवों को वह-सस्नेह,
प्याला एक पिलाती,
सुलाती उन्हें अङ्क पर अपने
दिखलाती फिर विस्मृति के वह अगनित मीठे सपने।

अर्द्धरात्रि की निश्चलता में हो जाती जब लीन,
कवि का बढ़ जाता अनुराग,
विरहाकुल कमनीय कण्ठ से
आप निकल पड़ता तब एक विहाग।

(परिमल से)

अवकाशवाली सभ्यता

रामधारी सिंह 'दिनकर'

कवि परिचय :

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' का जन्म बिहार राज्य के मुंगेर जिले के सिमरिया घाट में सन् 1908 ई० में एक कृषक परिवार में हुआ था। दिनकर जी की प्रारंभिक शिक्षा गांव में ही हुई। इन्होंने मोकामा घाट हाई स्कूल से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। पटना कॉलेज से बी.ए. ऑनर्स किया। दिनकर जी को पारिवारिक परिस्थितियों से बाध्य होकर अध्यापन करना पड़ा। वह बिहार सरकार के अधीन रजिस्ट्रार के रूप में भी कार्यरत रहे। इन्होंने मुजफ्फरपुर कॉलेज के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष के रूप में भी कार्य किया। इन्होंने बिहार सरकार के प्रचार विभाग का उपनिदेशक बनकर भी कार्य किया। इन्होंने भागलपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति पद को भी सुशोभित किया। वह राज्यसभा के सदस्य भी मनोनीत हुए। उन्होंने भारत सरकार के स्वराष्ट्र मंत्रालय में हिन्दी सलाहकार के रूप में भी अपनी सेवाएं दीं।

***इनकी प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं** — कुरूक्षेत्र, रेणुका, हुंकार, रश्मिरथी, प्रणभंग, परशुराम की प्रतीक्षा, नीलकुसुम, उर्वशी आदि उनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं। संस्कृत के चार अध्याय अर्द्धनारीस्वर, मिट्टी की ओर आदि उनकी गद्य रचनाएँ हैं।*

'दिनकर' जी प्रगतिवादी कवि हैं। वह ओज एवं पौरूष के कवि हैं। राष्ट्रीयता की भावना उनकी कविताओं का प्रधान विषय है। दिनकर जी सामाजिक समस्याओं के प्रति बेहद संवेदनशील रहे हैं। दीन-हीन मजदूरों, किसानों, समाज के शोषित एवं पीड़ित जन समुदाय के सच्चे हमदर्द रहे हैं और तीखे आक्रोश के साथ सामाजिक वैषम्य एवं शोषण के खिलाफ आवाज उठाई है।

दिनकर जी को अनेक सम्मान मिले हैं। 'संस्कृत के चार अध्याय' कृति पर उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ। भागलपुर विश्वविद्यालय ने उन्हें डि.लिट की उपाधि प्रदान की। 'उर्वशी' काव्य के लिए उन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया। वह राष्ट्रभाषा आयोग के सदस्य भी बनाए गए। भारत सरकार ने उन्हें पद्मभूषण से सम्मानित किया।

दिनकर जी की मृत्यु 24 अप्रैल 1974 ई० को हुई।

मैं रात के अंधेरे में
सितारों की ओर देखता हूँ,
जिनकी रोशनी भविष्य तक जाती है।

अनागत से मुझे यह खबर आती है
कि चाहे लाख बदल जाये,
मगर भारत भारत रहेगा।

जो ज्योति दुनिया में
बुझी जा रही है,
वह भारत के दाहिने करतल पर जलेगी।

यंत्रों से थकी हुई धरती
उस रोशनी में चलेगी।

साबरमती, पाण्डिचेरी, तिरूवण्ण मलई
और दक्षिणेश्वर,
ये मानवता के आगामी
मूल्य पीठ होंगे।

जब दुनिया झुलसने लगेगी,
शीतलता की धारा यहीं से जायेगी।

रेगिस्तान में दौड़ती हुई संततियाँ
थकने वाली हैं
वे फिर पीपल की छाया में
लौट आयेंगी।

आदमी अत्यधिक सुखों के
लोभ से ग्रस्त है
यही लोभ उसे मारेगा।

मनुष्य और किसी से नहीं,
अपने आविष्कार से हारेगा।

गाँधी कहते थे,
अवकाश बुरा है,
आदमी को हर समय
किसी काम में लगाये रहो।

जब अवकाश बढ़ता है,
आदमी की आत्मा ऊँघने लगती है।

उचित है कि ज्यादा समय
उसे करघे पर जगाये रहो।

अवकाशवाली सभ्यता
अब आने ही वाली है।

आदमी खायेगा, पियेगा
और मस्त रहेगा।

अभाव उसे और किसी चीज का नहीं
केवल काम का होगा।

वह सुख तो भोगेगा
मगर अवकाश से त्रस्त रहेगा।

दुनिया घूमकर
इस निश्चय पर पहुँचेगी
कि सारा भार विज्ञान पर
डालना बुरा है।

आदमी को चाहिए कि वह
खुद भी कुछ काम करे।

हाँ, यह अच्छा है
कि काम से थका हुआ आदमी
आराम करे।

समय के ढेर पर

गिरिजाकुमार माथुर

कवि परिचय :

गिरिजाकुमार माथुर 'तार सप्तक' के सप्त कवियों में से एक थे। इनका जन्म मध्यप्रदेश के अशोक नगर में सन् 1919 ई० में हुआ था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही हुई। इन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय से एम.ए.और एल.एल.बी. की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की। इन्होंने कुछ वर्षों तक वकालत किया। माथुर जी नई दिल्ली सचिवालय में भी कार्यरत रहे। कुछ समय तक ऑल इंडिया रेडियो में भी कार्य किया।

इनकी प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं *— मंजीर, नाश और निर्माण, धूप के धान, शिलापंख चमकीले आदि उनके काव्य संग्रह हैं। उन्होंने कविता के अतिरिक्त नाटक, एकांकी एवं आलोचना से संबंधित रचनाएँ भी रचीं।*

गिरिजा कुमार माथुर प्रयोगवाद और नई कविता के कवियों में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इनकी कविताओं में निराशा, विषाद, असफलता और रुग्णता स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ती है। इनकी कविताओं में शिल्प विधान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। संस्कृत, हिन्दी, उर्दू और दैनिक बोलचाल के शब्दों से सजी हुई इनकी भाषा अत्यन्त समृद्ध और संप्रेषणीय है।

माथुर जी का देहान्त सन् 1994 ई० में हो गया।

व्यर्थ गया है जीवन
इतने सारे वर्षों में
सिर्फ असमर्थता का
ढेर–ढेर कूड़ा ही इकट्ठा हुआ
अधूरा रूका है वक्त
और यह देह सिर्फ आधी साँस लेती है

हर सेकिंड को टोककर
जोर से डंक मारती है
बड़ी–बड़ी सुइयों वाली घड़ियाँ
निहाई पर चलते हुए
रक्त बूँदों के रिबन
हर बूँद पर पड़ता है

पलों का हथौड़ा
ठन होती है घड़ी की आवाज
कुचल जाता है एक और मिनट

    मुझे डर लगता है
    हर तेज घड़ी की आवाज से

सन्नाटे में
एक सेकिंड और बिन चीखे मरता है
मेरी उम्र पर लगातार कोई एक छाया-पाँव धरता है

    मैं विवश बँधा हूँ
    इस सारे परिवेश से
    मेरी निरंतर लड़ाई है
    काल और देश से

कंकाल चेहरों वाले
चारों तरफ

    डायल ही डायल है
    हड्डियों की टक्-टक्
    और मैंने अपने आसपास
    एक मनमानी अनंतता रोप ली है
    काल की धारा छिपाकर
    एक टूटती देह में कैद की है।

हो गई है पीर पर्वत–सी

दुष्यंत कुमार

कवि परिचय :

समकालीन नयी कविता के लोकप्रिय कवि दुष्यंत कुमार जी का जन्म 1 सितम्बर 1933 ई० को बिजनौर जिले के राजापुर नवादा में हुआ था। इन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम.ए. (हिन्दी) की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके पश्चात दुष्यंत जी स्वत्रंत लेखन करने लगे। इन्होंने आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों में कार्यक्रम अधिकारी के रूप में कार्य किया। यह मध्य प्रदेश शासन के आदिम जाति के कल्याण विभाग में अनुसंधान अधिकारी के रूप में कार्यरत रहे।

इनकी प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं — *'सूर्य का स्वागत', 'आवाजों के घेरे', 'जलते हुए वन का वसन्त', इनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं। 'साये में धूप' इनका गजल संग्रह है। 'एक कंठ विषपायी' उनका काव्य नाटक है। इसके अतिरिक्त उन्होंने कई उपन्यासों की भी रचना किया है।*

दुष्यंत जी नयी कविता के उन कवियों में से हैं जो तार–सप्तकों के माध्यम से कविता के क्षेत्र में अवतरित नहीं हुए। इनका काव्य भारतीय जनता की आशा–निराशा, हर्ष–विषाद आदि को अभिव्यक्त करता है। राजनीतिक दुरवस्था से उत्पन्न सामाजिक विसंगतियों, खोखले सिद्धांतों और दिन–प्रतिदिन कठिन होते जा रहे जीवन यापन की समस्याओं से उत्पन्न हताशा की अभिव्यक्ति इनके काव्य में हुई है। इनकी कविताओं में व्यंग और आक्रोश का मिलाजुला स्वर दिखाई पड़ता है जिसका कारण स्वातंत्रयोत्तर राजनीतिक दुरवस्था को माना जा सकता है।

इनकी मृत्यु 30 दिसम्बर 1975 ई० को हृदयाघात से हुई।

हो गई है पीर पर्वत–सी पिघलनी चाहिए,
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।

आज यह दीवार, पर्दों की तरह हिलने लगी,
शर्त लेकिन थी कि ये बुनियाद हिलनी चाहिए।

हर सड़क पर, हर गली में, हर नगर, हर गाँव में,
हाथ लहराते हुए, हर लाश चलनी चाहिए।

सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं,
मेरी कोशिश है कि यह सूरत बदलनी चाहिए।

मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही,
हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए।

पारिभाषिक शब्दावली

पारिभाषिक शब्दावली (50 शब्द)

1. Typing — टंकण
2. Receipt — आवती
3. File — मिसिल
4. Disposal — निपटान
5. Joint Secretary — संयुक्त सचिव
6. Circular — परिपत्र
7. Diciplinary — अनुशासनिक
8. Interval — मध्यांतर
9. Minutes — कार्यवृत
10. Reconsideration — पुनर्विचार
11. Draft — मसौदा
12. Gazette — राजपत्र
13. Resolution — संकल्प
14. Guidence — संदर्शन
15. Enclosed — संलग्न
16. Specimen — नमूना
17. Rule — नियमावली
18. Verification — सत्यापन
19. Designation — पदनाम
20. Concurrence — सहमति
21. Amendment — संशोधन
22. Authorised — अधिकृत
23. Criticism — आलोचना
24. Revenue — राजस्व
25. Seminar — संगोष्ठी
26. Discount — बट्टा
27. Deputation — प्रतिनियुक्ति
28. Testimonial — प्रशंसा पत्र
29. Pass Port — पार पत्र
30. Ad-hoc — तदर्थ
31. Statutory Order — सांविधिक आदेश
32. Forenoon — पूर्वाह्न
33. Junior — कनिष्ठ
34. Priority — प्राथमिकता
35. Statement — विवरण
36. Entitled — हकदार
37. Endorsement — पृष्ठांकन
38. Agenda — कार्यसूची
39. Notification — अधिसूचना
40. Indent — मांग पत्र
41. Probation Period — परिवीक्षा काल
42. Service Book — सेवा पंजी
43. Recovery — वसूली
44. Adjustment — समायोजन
45. Receptionist — स्वागती
46. Computer — संगणक
47. Supervisor — पर्यवेक्षक
48. Affidavit — शपथ पत्र
49. Motion — प्रस्ताव
50. Registration — पंजीकरण